

पर्यावरण PERSPECTIVE

November 2020

Issue No-2

NOT FOR SALE

LET'S WORK FOR MOTHER NATURE

धरती का तापमान बताती है नदियाँ

आधुनिक जीवन शैली का परिणाम है पर्यावरण
असंतुलन
PAGE 12

ECO - BRICKS

Need of the Hour
PAGE 23

पत्तल एक, फायदे अनेक

आधुनिकता पर भारतीय परंपरा का प्रहार

16

don't forget to visit

WWW.PARYAVARANPERSPECTIVE.COM



Contents

04 संपादकीय: बिन पानी सब सून

06 EIA: AIDING AGRICULTURE

10 पर्यावरण: पॉलिथीन मुक्त हुआ मंदिर परिसर

12 पर्यावरण: धरती का तापमान बताती है नदियाँ

14 रामराज्य: मनुष्य और प्रकृति का साहचर्य ही आदर्श है

16 पत्तल एक, फायदे अनेक: एक सांस्कृतिक जरूरत

18 पॉलिथीन बंधन-धरती वंदन: ये प्रगति संगत है

20 कोरोना: धरती का अस्तित्व खतरे में

22 इको-ब्रिक्स: पृथ्वी को प्लास्टिक और पॉलीथीन से बचायेगा

इस अंक में

23 ECO-BRICKS: NEED OF THE HOUR

25 ECO-BRICKS: WILL MATTERS

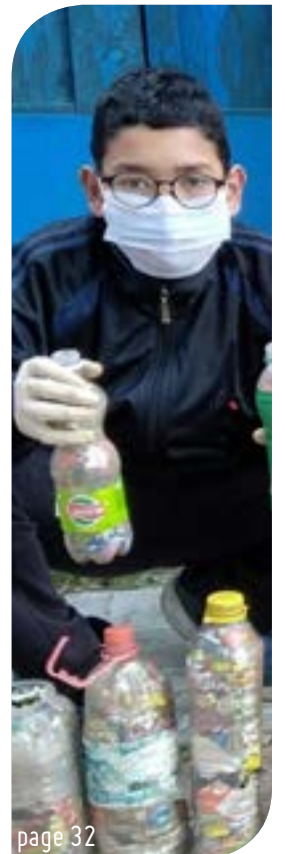
26 EARTH DAY: PROTECTING PLANET FROM POLLUTION

30 PARYAVARAN SANRAKSHAN GATIVIDHI: FIGHTING POLLUTION

32 ECO-BRICKS: NURTURING THE NATURE

33 MEGHALAYA: STRIVING FOR FOOD SECURITY

36 KARNATAKA: REJUVENATING THE POND



EDITOR-IN-CHIEF

Rajesh K Rajan

CONSULTING EDITOR

Dr. Atanu Mohapatra

EDITOR (ENGLISH)

Dr. Subhash Kumar

EDITOR (HINDI)

Ankur Vijaivargiya

EDITORIAL TEAM

Lokendra Singh

Dipti Sharma

Niyati Sharma

Kavita Mishra

CREATIVE & GRAPHICS HEAD

Alekhya Sachidananda

Nayak

बिन पानी सब सून

हमने *पर्यावरण Perspective* का पहला अंक पूरी तरह से पर्यावरण पर केंद्रित रखा था। मेरा मानना है कि अच्छे जल स्रोतों के बगैर अच्छे पर्यावरण की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। भारत सरकार ने इसी मकसद से 'जल जीवन मिशन' की शुरुआत की है। इसलिए अपने इस संपादकीय में मैंने जल पर ही बल दिया है।

'पानी एक बुनियादी आवश्यकता है' ये कथन हम स्कूल के दिनों से सुनते आ रहे हैं, पर पिछले 70 वर्षों से ये सपना आज भी सपना ही है। शायद यही वजह है कि हमारी वर्तमान सरकार ने सभी के लिए आवास, हर घर को बिजली, हर परिवार को शौचालय, महिलाओं के लिए धुंआ मुक्त रसोई, हर परिवार के लिए वित्तीय समावेशन, सभी के लिए सामाजिक सुरक्षा, बेहतर सड़कें/बुनियादी ढांचा, ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी को सुनिश्चित करने का संकल्प लिया है। इनमें से कई कार्य पूरे हो चुके हैं और कई के लिए हम आशान्वित हैं।

जल संकट भारत के लिए इस शताब्दी की सबसे बड़ी त्रासदी है। इसका कारण है जनसंख्या विस्फोट और जल के



न्यायोचित इस्तेमाल के लिए तकनीक का अभाव। मेरा मानना है कि हमारा राष्ट्रीय जल संकट, वैश्विक COVID-19 महामारी से भी ज्यादा चुनौतीपूर्ण समस्या है। कोरोना ने जल संकट को और भी उजागर कर दिया है। 82 प्रतिशत ग्रामीण घरों में Piped Water Supply नहीं है। ऐसे में कोरोना से बचने के लिए समय समय पर लोग हाथ कैसे धो पाएंगे।

हर घर को पर्याप्त पीने का पानी पहुँचाने, उसकी सहज उपलब्धता सुनिश्चित करने और 2024 तक देश के प्रत्येक (18 करोड़) ग्रामीण घरों में कार्यात्मक घरेलू नल कनेक्शन (FHTC) देने के लिए संकल्पित, भारत सरकार ने राज्यों के साथ मिल कर जल जीवन मिशन (JMM) की

शुरुआत की है।

नीति आयोग ने 2018 में जल डाटा संग्रह करने का एक अनोखा प्रबंधन Composite Water Management Index की शुरुआत की, जो जल संसाधनों के कुशल प्रबंधन में राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के बीच सहकारी और प्रतिस्पर्धी संघवाद की भावना पैदा कर जल को एक predefined objective parameters पर राज्यों के performance को मापता है।

'जल ही जीवन है', लेकिन हमारी who cares वाली सोच हमें निरंतर खतरे में ढकेलती जा रही है। सदियों पहले रहीम ने कहा था, 'रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून, पानी गए न ऊबरे, मोती मानुष चून'। उनकी सदियों पुरानी लिखी बातें आज और भी प्रासंगिक प्रतीत होती हैं।

जाने माने पर्यावरणविद श्री सुंदरलाल बहुगुणा ने बढ़ते जल संकट को लेकर चिंता व्यक्त करते हुए कभी कहा था कि अगला विश्व युद्ध पानी को लेकर लड़ा जाएगा। दरअसल, ये चेतावनी भविष्य में होने वाले जल संकट को चिन्हित करने के लिए थी।

पूरे ब्रह्मांड में सिर्फ पृथ्वी पर ही पानी है। यानी जल के बिना किसी सुनहरे भविष्य की कल्पना इस ग्रह पर नहीं की जा सकती। विज्ञान के बढ़ते कदम संभवतः भविष्य में इस अवधारणा को गलत साबित कर भी दें। पर सच तो ये है कि जल के बिना कृषि, निर्माण, व्यापार या उद्योग जगत का कोई भी कार्य संभव नहीं है। James Watt ने पानी की भाप से ही रेल इंजन इस दुनिया को दिया। मानव शरीर में करीबन 65 प्रतिशत पानी है, ये हम सब जानते हैं।

धरती का लगभग तीन चौथाई भाग जल से घिरा हुआ है, किंतु इसमें से 97 प्रतिशत पानी खारा है, जो पीने योग्य नहीं है। मतलब महज 2.5 से 3 फीसदी पानी ही पीने योग्य है। लेकिन ये भी पूर्ण सत्य नहीं है। इस मीठे पानी का भी दो-तिहाई हिस्सा हिमपर्वतों और भूगर्भों में ही निहित है, जो की दुर्लभ और दुर्गम दोनों ही है। शेष मीठा पानी भी अग्राह्य है, क्योंकि वो मानसून या बाढ़ से आता है। मतलब दुनिया में जितना पानी है, उसका सिर्फ .08 प्रतिशत इंसानों के लिए है।

एक अध्ययन के मुताबिक भारत की आधे से ज्यादा आबादी को पीने के लिए सुरक्षित जल स्रोत उपलब्ध नहीं हैं और जिस वजह से लगभग 2,00,000 लोग हर साल मर जाते हैं। जल हमारे समाज और अर्थव्यवस्था के हर पहलू को प्रभावित करता है। समस्या इतनी जटिल है की हम सब के जीवन और आजीविका पर इसका सीधा असर दिखता है। जल संकट एक हैंडपंप लगा देने या बिसलरी की एक बोतल खरीद लेने से हल नहीं हो सकता।

आज तक जल संकट का कोई ठोस समाधान इसलिए नहीं निकल पाया, क्योंकि हमारी पिछली सरकारें जल की समस्याओं का समाधान underground water से करना चाहती थीं, न कि rainwater और ground-water से।

नीति आयोग की माने तो पानी की मांग अगले बीस वर्षों में उपलब्ध आपूर्ति से करीब 40 प्रतिशत तक बढ़ जाएगी। भूजल स्तर में लगातार गिरावट के अलावा, जल में जहरीले रसायनों, अपशिष्ट पदार्थों और अन्य अशुद्धियां (TDS जैसे कि सोडियम, मैग्नीशियम, मरकरी, नाइट्रेट, पैरागॉन आदि) की मात्रा दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, जो काफी हानिकारक है। शुद्ध पानी में TDS की permissible limit 200 से 300 mg/litre है, जो बढ़कर 1500 mg/litre के खतरनाक स्तर पर पहुंच चुकी है। जल स्तर इतना नीचे जा चुका है, कि जो शुद्ध जल 50-60 फीट पर ही मिल जाता था, अब वो 100 से 120 फीट पर जाकर कहीं मिलता है।

जल विशेषज्ञों का मानना है कि शहर के लोग पानी के रूप में जहर ही पी रहे हैं, जिस से Typhoid, Cholera, Diarrhoea, Dysentery, Malaria, Typhoid, Filariasis जैसी बीमारियां सर्वत्र व्याप्त है।

ऐसे में करीब ढाई सौ साल पहले लिखी अंग्रेजी साहित्यकार Samuel Taylor Coleridge की पंक्तियों की बरबस याद आ जाती है: “Water, water, everywhere, Nor any drop to drink.” अभी भी मानव जाति प्रकृति का दोहन करने और जल स्रोतों को दूषित करने से परहेज नहीं कर रही है। फलस्वरूप, हमारी जीवन और सभ्यतादायिनी नदियां दूषित ही नहीं, अपितु अपने अस्तित्व के लिये जूझ रही

हैं। कई नदियां विलुप्त हो चुकी हैं और कई होने वाली हैं। और हम मानव आधुनिकता की होड़ में non-stop शहरीकरण और औद्योगिकीकरण किये जा रहे हैं। इन नदियों और प्रकृति का संरक्षण करने के बजाए उनमें हम तमाम तरह के industrial/chemical effluents/discharges/plastic wastes/excreta को बिना कुछ सोचे समझे प्रवाह कर रहे हैं और प्रकृति का निरंतर दोहन करने में लगे हैं।

अंधविश्वास का आलम तो देखिए, अपनी सदियों पुरानी परंपराओं के नाम पर अपने लोगों का मरणोपरांत दाह और अंतिम संस्कार किसी नदी तट पर या फिर शवों को सीधे ही नदियों में प्रवाह कर रहे हैं। क्या बुद्धिजीवियों को इतना पाखंड करना शोभा देता है? क्या हम वाकई इतने अनभिज्ञ हैं कि हमें ये पता नहीं की ऐसा करना प्रदूषण को बढ़ावा देना और आग में घी डालने जैसा है?

क्या हमें समाज में व्याप्त विरोधाभास नहीं दिखता, कि एक तरफ हमारे संपन्न लोग बिसलरी की बोतल खरीद कर पानी पीते हैं और दूसरी तरफ आज भी हमारे देश में कुछ इलाके ऐसे हैं, जहां शुद्ध तो क्या अशुद्ध पानी भी नसीब नहीं होता? दुनिया में पानी की कमी के मद्देनजर मानव जाति और दूसरी प्रजातियों को इस बात की उम्मीद नहीं रखनी चाहिए कि उन्हें हमेशा पानी मिलता ही रहेगा।

ऐसा नहीं है की हमारी सरकारों को ये पता नहीं। पर ये जनभागीदारी के बगैर संभव नहीं है। मेरा ये मानना है कि जीवन और सभ्यतादायिनी नदियों/नहरों को प्रदूषित करने से बड़ा

और जघन्य कोई अपराध नहीं हो सकता। जल प्रदूषण की गंभीर समस्या को देखते हुए, वक्त आ गया है कि हमारी सरकारें इस पर कठोरतम कदम उठाएं और ऐसे अपराध में संलग्न लोगों को कठोर से कठोर सजा दी जाए।

पर्यावरण PERSPECTIVE

अपने पाठकों से इस नेक काम को समर्थन देने का आह्वान करती है।

आप अपने इर्दगिर्द होने वाली सफल और प्रेरणादायी कहानियों को surabhi.tomar@gmail.com पर साझा करें और पर्यावरण से जुड़े हमारे कार्यक्रमों और योजनाओं को जानने के लिए, कृपया www.paryavaransanrakshan.org पर जाना न भूलें।

(RAJESH K RAJAN)

EIA

AIDING AGRICULTURE

MINIMIZING AGRICULTURAL LAND DEGRADATION AND PROTECTING RURAL ENVIRONMENT SHOULD BE THE FOCUS

ANANTHANAAYANA S K

THE NEW EIA initiatives of the Ministry of Environment and Forests have given much emphasis on Forest Protection, controlling industrial pollution, and making easy for developmental projects. It is good, but more importantly, the Ministry of Environment shall consider the impacts of modern agricultural practices which are harmful to present and future environmental conditions. Present agricultural practices emphasize more on using chemical fertilizers, pesticides, and mechanical technology for augmenting yield, in turn, resulting in developing infertile land, low-quality Agri produces, ill health, rural employment, and longevity of human beings and animal life. This article would like to focus the impact on agriculture and to assess the agricultural land and rural environment which is losing natural strength due to modern agricultural practices and to draw the attention of various policymakers and environmentalists to work on.

First, we need to understand the area covered under forest and land used for agriculture. According to the 2019 report, the total forest cover in the country is 712,249 square kilometers which are 21.67 percent of India's total geographical area. Agricultural land use in India was reported at 60.45 % in 2016, according to



the World Bank development indicators, compiled from officially recognized sources. India has the largest percentage of its land under agricultural use to cater to its large population in terms of food provision. Agriculture is done for both subsistence as well as commercial purposes. Large scale cultivation of plants is also done for exports

Many fertilizers that are commonly used in agriculture contain the three basic plant nutrients: nitrogen, phosphorus, and potassium. Some fertilizers also contain certain "micronutrients," such as zinc and other metals that are believed as necessary for plant growth. The other Farmers put anhydrous ammonia into the subsoil in a liquid form. Some of the harmful chemical fertilizers and pesticides may cause waterway pollution, chemical burn to crops, increased air pollution, acidification of the soil, and mineral depletion of the soil. Other fertilizers include urea ammonium nitrate (UAN), granular urea, ammonium nitrate, and diammonium phosphate which are harmful to land fertility and health of humans and animals. Chemical fertilizers do allow farmers to produce more crops in the short-term but may lead to fewer or poor quality crops in the long term. This is because of the intricacies of soil health. Much like humans, the soil needs a delicate balance of nutrients to remain healthy. Modern agricultural practices have made more damage to our agricultural land and environment making Farmers dependent on using chemical fertilizers, pesticides for their farm activities.

It's time to put a check, assess, and to have a controlling policy on modern agricultural practices to protect the soil fertility, production, and environmental impact because of modern agriculture.

Most of the environmental activists are interested, engaged, articulating more and more on the loss of forest, deforestation, pollutions, maintaining hygiene in urban centers. There is no attention towards protecting degraded agricultural land and rural environment. It is imperative that protecting land quality, crop quality, productivity, and agricultural land and rural environment requires more attention with activities be focused to find solutions. It will do no good to find the solution after the disease has spread and start with diagnosis and treatment. A large and important sector like the agricultural environment and agricultural production requires prognosis rather than diagnosis.

This write-up does not mean that we should neglect rapid deforestation, pollutions, or unhygienic urban centers, but it is to highlight that the priority sector must be given importance and more attention. We are worried more about increasing and protecting 21.1% of forest area while agricultural land, which is 60.45 % of our total land is moving towards infertility and making peasants live in a helpless dark degraded agricultural environment due to lack of attention.

The reasons are many, changing lifestyles, imitation of western life culture as modern, physicalism, and treating agriculture as an industry. Apart from these reasons we are losing many indigenous seeds, breeds, and traditional agricultural culture due to modern agricultural practices. These are the reasons farmers lost their socio-cultural and traditional values, understanding agriculture as a way of life will be better. Many people argue that there was an acute food shortage before

independence but they failed to accept, recognize that the life expectancy was very high, deaths happened due to many pandemic diseases such as plague, cholera etc., if not merged with infant mortality rate, which had not connection with the food products we consume and people always merge and analyze the life expectancy issue with frightening infant mortality death rates and forgetting pandemic diseases during British rule. Today there are lots of hospital facilities and specialty health services available still we are unable to achieve the required life expectancy. The reason is that the present generation is not getting the expected quality food, live in a polluted

indigenous organically grown farm produces are better for health? Are we able to believe in soil friendly natural manures which are the best nutrients for plants? Do you believe land fertility can be protected by using organic manures? Where were all these chemical fertilizers and pesticides before independence? Do people know the truth behind the introduction of hybrid variety seeds? What made our farmers grow hybrid varieties? Do you understand the importance of siridhanya and navadhanya? Do you know what happened to our indigenous desi seeds and breeds? Why the farmers are tempted to grow more commercial crops? Still, Bharat has a name for supplying medic-

Can we believe and advocate that indigenous organically grown farm produces are better for health?

Do people know the truth behind the introduction of hybrid variety seeds?

What made our farmers grow hybrid varieties?

atmosphere and environment, air, water, and food is polluted, how we can expect better life expectancy, good thinking, and good working. More problematic is that our farmers trying to practice western methods of farming as modern and scientific and unfortunate that our farmers are forced to follow western agricultural practices through our policies, targets, and achievements. Because of the use of chemical fertilizers and pesticides many people are suffering from cancer Punjab is the best example.

Can we believe and advocate that

inal plants, herbs, and spices. Do you think all these medicinal plants, herbs, and spices were grown earlier by using chemicals and fertilizers? Questions are many, but the answer is only one, and it is organic agriculture. Organic agriculture and farming only have proved a unique relation with protecting land fertility, agriculture, and farmers' socio-cultural environment of Bharat. We should remember the glorious environment-friendly organic agriculture and cultured farmers used to practice earlier in Bharat. There is a concept of regenerative agriculture and farming practices in many of developed

countries and are initiating it since 80's results to be revealed across the places.

Today we are unable to understand the damages of chemical fertilizers and pesticides made on agriculture since independence, thanks to the so-called Green Revolution and hybrid seeds, chemical input manufacturing industries, agricultural science and technology, agricultural management professionals and all those people put the effort into the modernization of Indian agriculture. We should remember that nature can give all the

should be initiated to find organic solutions for the crop diseases.

Organic farming is based on agro-ecological principles; it means that an organic farm is organized to mimic nature's ecological systems as much as possible. In practice, the animals have more access to the outdoors, to both grazing and free movement, than on a conventional farm. There is no artificial chemical added to land, the organic manure is the better nutrients for the crops and land fertility. The present and future agricultural pol-

are tempted to put more and more chemical fertilizers, pesticides for hybrid varieties to get more yield of fewer quality products for less price. Today's agricultural practices are good at making land infertile and vulnerable. Farmers of the entire nation should be educated thoroughly on the impact of using chemical fertilizers, pesticides for hybrid varieties. For this formal and informal approaches may be adopted. Agricultural environmental education, training, and awareness programs shall be planned especially for farmers. Institutions shall be developed by establishing Universities, Research, and Training centers on organic farming in each state of the country. Over some time, it will contribute to the required knowledge, learning, and human resource for organic farming, then only the real agricultural transformation will take place across the country.

It is right that the Ministry of Environment and Forests introduced a new policy with its limitations and scope. It is hopeful in resolving the present problems associated with protecting Forests, Wildlife, controlling Pollution, and removing hurdles for developmental projects. Beyond that there is a major and important agricultural environment segment that is affected through modern imitation practices and the Ministry of Environment shall give more attention. The agricultural costs, price productivity, qualities of food products are alarming the people working in infertile land and the pressure is to take initiatives to prevent the damages from modern agricultural practices in the rural environment. An extensive study and research programs shall be conducted across India to understand the damages of chemical fertilizers, pesticides used in present agriculture and the impact assessment must be on agricultural land and environment. The study results shall be revealed and made available for policymakers and farmers in an



needs of human beings and it also fulfilled the greed with many damages and destroying our future. The choice is ours whether we live in need-based socio-cultural agriculture of Bharat or western lifestyle ridden with greed. We should think that we are living in Bharat, not in India. Promoting and modernizing organic farming with finding best bio-fertilizers, bio-pesticides weedicide, and bio-technological efforts in protecting indigenous seeds and breeds are required. There are challenges for organic farming also, but it never spoils fertile land and agricultural ecosystems. Research activities

and practices should be such that it should support the farmer's capability in producing natural indigenous quality food crops from a natural way, not by the concept of exploitation of nature.

The demand and market for organic farm produce are infinite and growing because of its indigenous qualities and health reasons. Using and promoting organic farm produce is the ultimate solution for minimizing or stopping the usage of harmful chemical fertilizers, pesticides, and to protect presents agricultural land and environment. The farmers

illustrated way.

Today, it is a fancy, speaking, and working on the environment; everyone speaks on Forest Protection, Wildlife protection, habitat protection, controlling various pollutions, many are busy conducting programs on cleaning, health, and hygiene. Though it looks like a fashion, publicity oriented, every activities and approach on the environment are worth appreciation because it shows expression and concern on environment protection. Many of these activities are done either in association with MoEF or by the inspiration of self-motivated voluntary individual and groups.

Most of the environmentalists and activities are planned keeping forests, wildlife, urban greenery programs, waste management or cleaning in urban centers

in their mind, and it is inevitable typical traditional environmental activities also, some of them engaged in aggressive protesting against tree cutting or organizing protests against Govt. development programs to withhold their local political interests or to draw unwanted public attention to show off. Whatever protection and constructive activities we do on the environment is a small part of the environment; the environment covers the whole geography. Environmental works are more a constructive and long-term activities. All the environmental activities should be capable of making an effective impact on reducing and removing imitating western modern life culture and it should educate or build awareness among people extending their commitment to practice Bharatiya lifestyle and culture according to the need for environmental protection.

Finally, we need more environmentalists who understand and give more attention to protecting our native culture based methods of organic farming and desi seeds breeds, who can initiate more environmental education and training programs and constructive activities for protecting agricultural land fertility and rural environment. It is an appeal that Environment Impact Assessment on agriculture to be initiated to understand and solve the present and future problems in the priority sector. Encouraging, Educating, and developing environmentalists in this regard is a need of the time and the intention of this write-up.

By Ananthanaayana S K, Mysore, Karnataka
Email nannaparisara@gmail.com,
Mob: 9741111967



पर्यावरण

पॉलिथीन मुक्त हुआ मंदिर परिसर

मंदिर प्रांगण में मिट्टी के कुल्हड़, पत्तल एवं कागज के थैलों का ही प्रयोग हो रहा है

डॉ. महेंद्र प्रताप सिंह

हमारे देश के प्रायः सभी प्राचीन तीर्थस्थल नदियों के किनारे स्थित हैं। नदियों की स्वच्छता हेतु विभिन्न स्तरों पर अनेक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। प्रकृति की गोद में स्थित तीर्थ का मानस पटल पर व्यापक आध्यात्मिक प्रभाव पड़ता है। लगभग सभी प्रसिद्ध पौराणिक तीर्थ नदियों के किनारे स्थित हैं। इन तीर्थों के सम्यक विकास हेतु कुछ उपयोगी सुझाव निम्न प्रकार हैं...

1. स्वच्छता अभियान : तीर्थस्थलों पर प्रायः अपेक्षित स्वच्छता नहीं रहती है। धार्मिक भावना से वहां के लोगों मुख्यतः साधु-संतों, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं अन्य प्रबुद्ध लोगों के साथ स्वच्छता का कार्यक्रम चलाया जा सकता है। तीर्थस्थलों के जलस्रोतों की सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

2. पॉलिथीन मुक्ति : पॉलिथीन स्थाई गंदगी का एक प्रमुख स्रोत है। यह हजारों वर्षों तक विघटित

4. चढ़ाए गए फूल आदि का उपयोग : मुख्य मंदिरों से बड़ी मात्रा में फूल, माला आदि निकलते हैं। इनसे अगरबत्ती एवं धूपबत्ती बनाई जाती है। इस कार्य से मंदिर की सफाई के साथ-साथ स्थानीय लोगों को रोजगार भी मिलता है।

5. जलस्रोतों में विसर्जन को हतोत्साहित करना : नदियों एवं पवित्र सरोवरों में मूर्तियों एवं प्रयोग की जा चुकी हवन सामग्री को विसर्जित करने की परंपरा है। इसी के साथ बड़ी मात्रा में पॉलिथीन थैली भी जलस्रोतों में डाल दी जाती हैं। इसे प्रत्येक दशा में रोका जाना चाहिए।

इस दिशा में मां चंद्रिका देवी मंदिर परिसर में किये गये प्रयासों के बारे में आपको जानना चाहिए।

लखनऊ से लगभग 30 किलोमीटर दूर बक्शी के तालाब के आगे मां चंद्रिका देवी शक्तिपीठ परिसर स्थित है। यह प्रसिद्ध पौराणिक तीर्थ है। नवरात्रि एवं अमावस्या के अवसर पर यहां बहुत बड़ा मेला लगता है। मंदिर समिति एवं स्थानीय लोगों के साथ बैठक कर सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि दिनांक 28 सितंबर 2011 से इस परिसर को पॉलिथीन मुक्त किया जायगा। उसके बाद आस पास के कुम्हारों के साथ बैठक कर कुल्हड़ आपूर्ति की व्यवस्था की गई। पॉलिथीन थैली के विकल्प के रूप में दुकानदारों को कागज एवं वैकल्पिक थैले उपलब्ध कराये गये। इस



नहीं होता एवं गाय तथा अन्य जानवर इसे खाकर मर जाते हैं। धीरे-धीरे तीर्थस्थलों पर पॉलिथीन का प्रयोग समाप्त किया जाना चाहिए।

3. वृक्षारोपण : तीर्थों को हरा-भरा किया जाना आवश्यक है। जो तीर्थस्थल नदी तट पर स्थित हैं, वहां धार्मिक एवं पर्यावरणीय महत्व की प्रजातियों जैसे-पीपल, पाकड़, बरगद, गूलर आदि एवं लुप्त हो रही प्रजातियों जैसे-कैथा, बड़हल, खिरनी आदि का रोपण किया जाना चाहिये। विभिन्न देवी देवताओं से जुड़े पौधों का रोपण एवं देखरेख की व्यवस्था हो तो विशिष्ट प्रजातियां जैसे-रुद्राक्ष एवं कल्पवृक्ष आदि का रोपण किया जाना चाहिये।

ऐसे होगा तीर्थों का विकास

- स्वच्छता अभियान
- पॉलिथीन मुक्ति
- वृक्षारोपण
- चढ़ाए गए फूलों का उपयोग
- जलस्रोतों में विसर्जन रोकना

प्रकार प्रथम चरण में दुकानों पर पॉलिथीन कप के स्थान पर कुल्हड़ लाये गये तथा पॉलिथीन थैलियों के स्थान पर कागज एवं अन्य थैलों का प्रयोग

प्रारंभ किया गया।

यह क्षेत्र पॉलिथीन मुक्त तो हो गया था, किन्तु अब इसे स्थाई बनाना था। स्वामी विवेकानंद जी ने कहा है कि यदि भारतीय जनमानस को कोई बात हृदयंगम करानी है, तो इसे धर्म के माध्यम से कराया जाना अधिक प्रभावी होगा। इसी विचार के अनुरूप स्थाई रूप में इस परिसर को पॉलिथीन मुक्त बनाने

धार्मिक महत्व के पेड़

- पीपल
- पाकड़
- बरगद
- गूलर
- कल्पवृक्ष
- रुद्राक्ष
- सिंदूर

के लिये स्थानीय ग्रामवासियों, मंदिर समिति के लोगों एवं दुकानदारों को दिनांक 28 सितंबर 2011 को नवरात्रि के प्रथम दिवस पर मंदिर परिसर में आध्यात्मिक गुरु संत स्वामी महेशानंद जी द्वारा परिसर को पॉलिथीन मुक्त करने की शपथ दिलाई गई। आज मंदिर परिसर में दुकानों को पॉलिथीन मुक्त किया जा चुका है। श्रद्धालुओं एवं भक्तों द्वारा पॉलिथीन का प्रयोग रुकवाने एवं मेले के दिनों में बाहर से आने वालों से पॉलिथीन रुकवाने की दिशा में मंदिर समिति के सहयोग से प्रयास जारी है।

इस संबंध में मेरा एक विशिष्ट

अनुभव है। वर्षाकाल में एक दिन मैं मंदिर दर्शन एवं परिसर के कार्यों का निरीक्षण करने गया था। एक दुकान से कुछ सामान खरीदकर उसे पॉलिथीन में बंद करने को कहा। दुकानदार ने कागज के थैले में सामान दिया एवं किसी भी दशा में पॉलिथीन थैले के लिए तैयार नहीं हुआ। उसने कहा कि मैंने इस पवित्र तीर्थ में एक महान संत से मंदिर परिसर में पॉलिथीन का प्रयोग न करने की शपथ ली है। अब मैं पॉलिथीन



का प्रयोग करके अपने लोक और परलोक दोनों को नष्ट नहीं करूंगा। आपको सामान लेना है तो कागज के थैले में ही मिलेगा। लेना हो तो लीजिये, चाहे न लीजिये।

दिनांक 28 सितंबर 2011 को ही स्वामी जी द्वारा कृष्णवट (Fi-



cus krishnaaii) का रोपण कर परिसर में वृक्षारोपण का शुभारंभ किया गया। कृष्णवट का वानस्पतिक नाम भगवान श्रीकृष्ण पर ही है। इसके पत्ते का निचला भाग दोने के जैसा होता है। कहा जाता है कि बाल्यकाल में



इसके पत्ते में मक्खन खाना श्रीकृष्ण भगवान को विशेष प्रिय था। गोमती तट पर जलभराव वाले क्षेत्र में अर्जुन का रोपण किया गया एवं मंदिर के आस-पास पीपल, पाकड़ एवं बरगद के साथ-साथ कैथा, बड़हल एवं आमरा जैसी अनेक लुप्त हो रही प्रजातियों को रोपित किया गया। धार्मिक महत्व को देखते हुये यहां कल्पवृक्ष, रुद्राक्ष, सिन्दूर का भी रोपण किया गया है। सभी प्रजातियां न केवल जीवित हैं, बल्कि अच्छी दशा में चल रही हैं एवं धीरे-धीरे अब वे वृक्ष का रूप ले रही हैं।

मंदिर प्रांगण में चाय आदि की दुकानों पर मिट्टी के कुल्हड़, चाट की दुकानों पर पत्तल एवं अन्य दुकानों पर कागज के थैलों का व्यापक प्रयोग किया जा रहा है। यहां अनेक बार सफाई कार्यक्रम भी चलाया गया, इससे यहां होने वाली गंदगी में कमी आई है। मंदिर परिसर में चढ़ाए गए फूलों से अगरबत्ती एवं धूपबत्ती बनाने का कार्य किया जा रहा है। पर्यावरण संरक्षण हेतु इस प्रकार के कार्य अन्यत्र भी प्रारंभ किये जाने चाहिये।

(लेखक मुख्य वन संरक्षक हैं एवं लखनऊ में कार्यरत हैं।)

पर्यावरण

धरती का तापमान बताती है नदियाँ

भारतीय संस्कृति में नदियों को स्वच्छ बनाये रखने के लिये 'मइया' जैसा श्रद्धा सूचक नाम से पुकारा जाता है

अनिल माधव दवे

जलवायु परिवर्तन एवं पर्यावरण असंतुलन का विश्व रंगमंच पर आज हो रहा हो-हल्ला आधुनिक जीवन शैली का परिणाम है। विश्व के तथाकथित सभ्य समाज ने जैसी दिनचर्या एवं जीवन रचना विकसित की, यह सब उसका ही प्रभाव है। आज का शहरी नागरिक सुबह जागने के बाद के तीन घण्टे में औसतन 50 लीटर पानी खर्च कर देता है। भोजन एवं नाश्ता करते समय लगभग 30 प्रतिशत खाद्यान्न सभ्य समाज झूठा छोड़ देता है। भोजनालय एवं भोजन की मेज पर होने वाले अन्न अपव्यय के कारण पूरे विश्व में लाखों टन कार्बन का व्यर्थ उत्सर्जन होता है। नगरीय व्यक्ति लघुशंका जाने के लिये हर बार शौचालय में औसतन 10 लीटर पानी खर्च कर देता है।

नलीय जीवन पद्धति (संगठित जल वितरण प्रणाली) ने छोटे-मोटे नगरों एवं कस्बों से लगाकर बड़े-बड़े महानगरों में पानी की एक भूख खड़ी कर दी है। यह स्थिति महाभारत की एक कथा की याद दिलाती है, जिसमें एक राक्षस को प्रतिदिन एक बैलगाड़ी अन्न, दो बैल और एक मनुष्य अनिवार्य रूप से खाने को लगता था। गाँववाले प्रतिदिन मजबूरी में अपने में से एक व्यक्ति को अनाज भरी बैलगाड़ी के साथ वहां

को मारना शुरू कर दिया है। जिन नदियों को समाज मार न सका (सुखा न सका) उसको उसने इतना गंदा कर दिया है कि अब वे नदियों के बजाय बहते हुये नाले बन गये हैं। हमारे शहर एवं नगरों के मध्य या आसपास से होकर जो बदबूदार नाला बह रहा है, यथार्थ में कोई सौ वर्ष पहले वह एक स्वच्छ सुंदर नदी थी।

भारतीय संस्कृति में नदियों को बड़ी श्रद्धा से देखा गया है। उसे किसी कर्मकाण्ड के अर्न्तगत माता नहीं माना बल्कि पर्यावरण एवं प्रकृति को स्वच्छ बनाये रखने के लिये उसे मइया जैसा श्रद्धा सूचक नाम और व्यवहार दिया। जो लोग नदी को दो किनारों के बीच बहता पानी मानते हैं वे भ्रम एवं भूल कर रहे हैं। वस्तुतः नदी की परिभाषा में उसका वह सम्पूर्ण जलग्रहण क्षेत्र आता है, जहां बरसी हुई प्रत्येक वर्षा की बूंद बहकर नदी में आती है। इस भू-भाग में जो जंगल, खेत, पहाड़, बस्तियाँ, जानवर एवं अन्य सभी चल-अचल वस्तुएं हैं, वे भी उसका शरीर ही हैं। इसमें निवासरत कीट-पतंगों से लगाकर बड़े-बड़े पहाड़ों तक से मानव जब व्यवहार में परिवर्तन करता है तो उसका सीधा प्रभाव नदी पर पड़ता है। चलते-चलते यह प्रभाव समान मात्रा में वहां निवास करनेवाले लोगों पर भी पड़ने लगता है। विश्व को सर्वाधिक आक्सीजन देनेवाला अमेज़ॉन का घना जंगल राष्ट्रीय आय बढ़ाने के नाम पर दक्षिण अमेरिका में काटा जा रहा है। विश्व के वैज्ञानिक इसके दुष्प्रभाव की गणना कर समाज और सरकारों को चेतावनी दे चुके हैं। कम ज्यादा मात्रा में विश्व के अर्द्धविकसित एवं विकासशील देशों का भी यही व्यवहार अपनी प्राकृतिक संपदाओं की ओर है। चिंता का विषय है कि पर्यावरण की मौलिक समझ का आज के अधिकतर योजनाकारों में भी अभाव है, जो विश्व-पर्यावरण संकट का प्रमुख कारण है। जबकि आज से लगभग 400 साल पहले शिवाजी महाराज अपने आज्ञापत्र (शासकीय आदेश) में स्पष्ट लिखते हैं कि अनावश्यक रूप से कोई भी वृक्ष न काटा जावे, यदि अनिवार्य हो तो कोई बूढ़ा वृक्ष उसके मालिक की अनुमति के बाद ही काटा जावे।

यूएनएफसीसी प्रतिवर्ष विश्व के किसी-न-किसी देश में जलवायु परिवर्तन पर एक पखवाड़े लम्बा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करता है। जी-7 जैसी महाशक्तियां एवं चीन, भारत जैसे उभरते देशों

आज का शहरी नागरिक सुबह जागने के बाद के तीन घण्टे में औसतन 50 लीटर पानी खर्च कर देता है। भोजन एवं नाश्ता करते समय लगभग 30 प्रतिशत खाद्यान्न सभ्य समाज झूठा छोड़ देता है। जिन नदियों को समाज मार न सका, उसको उसने इतना गंदा कर दिया है कि अब वे नदियों के बजाय बहते हुये नाले बन गये हैं। हमारे शहर के आसपास से होकर जो बदबूदार नाला बह रहा है, यथार्थ में कोई सौ वर्ष पहले वह एक स्वच्छ सुंदर नदी थी।

पहुंचाते थे। इसी तरह आज की नगरीय रचना ने अपने आसपास के नदी, तालाब एवं छोटे-बड़े जलस्रोतों

से लगाकर टुबालू (न्यूजीलैण्ड के पास का छोटा टापू देश) तक के राष्ट्र इसमें भाग लेते हैं। वहां पूरे समय गरमा-गरम बहस, वाद-प्रतिवाद एवं विचार-विमर्श होते हैं। पिछले 25-30 सालों में यह प्रयत्न अगर किसी मुकाम तक नहीं पहुंच पाया है तो इसका एक मात्र कारण है, विश्व नायकों



का प्राकृतिक संसाधनों की ओर देखने का सही दृष्टिकोण का अभाव! दृष्टि से ही व्यवहार और आचरण जन्म लेते हैं। अपरिपक्व दृष्टि शासन-प्रशासन में समाज संचालन के निरर्थक मार्ग तय करती है, जो सभी पर्यावरणीय संकटों की जड़ है।

पानी एवं कीट-पतंगे बिगड़ते पर्यावरण से सबसे पहले प्रभावित होते हैं और अपने व्यवहार से उसे व्यक्त भी करते हैं। पृथ्वी पर तीन प्रकार का जल है- (1) समुद्र का खारा जल, (2) मीठा जल, (3) सूक्ष्म जल। पृथ्वी के पर्यावरण में बदलाव होने पर ये अपने-अपने प्रकार से प्रतिक्रिया करते हैं। जमा हुआ जल पिघल कर बहने लगता है। समुद्र में निरन्तर बहने वाली धाराओं की दिशा एवं तापमान में बदलाव आता है। कालान्तर में चलते-चलते समुद्र अपनी सीमा छोड़ने लगता है। यह सब, समुद्र संसार के छोटे-बड़े जीवों, वनस्पतियों एवं सतहों पर प्रभाव डालते हैं। पृथ्वी पर उपलब्ध मीठे जल के स्रोतों में भी यही परिणाम आते हैं। अगर हम राख/भस्म, धातु या जीवाश्म जैसे तत्वों को छोड़ दें तो कम ज्यादा मात्रा में सभी में जल का अस्तित्व होता है। यह जल अनुपात उसके अस्तित्व में प्रभावी भूमिका निभाता है। जल की मात्रा में हुआ परिवर्तन उसके स्वरूप को ही बदल देता है। प्रदूषण के कारण बदल रहा पर्यावरण इन तीनों जलों के वैश्विक अनुपात को तेजी से बदल रहा है, जो बीमार होती पृथ्वी का प्रतीक है।

पृथ्वी पर पिछले 150 वर्षों में तथाकथित विकास के नाम पर जो खराब होना था, वह हो चुका! उस पर विलाप कर कुछ प्राप्त होनेवाला नहीं है। अब समय सम्भलने और सुधरने का है। यह समय नदी को पूरी समग्रता से समझ कर उसके सम्पूर्ण जलग्रहण क्षेत्र को स्वस्थ रखने का है। जिन्हें संस्कृति बचाना हो, वे भी नदियों का संरक्षण करें। जिन्हें स्वास्थ्य, शिक्षा एवं रोजगार जैसे मुद्दों पर प्रगति करना हो, वे भी इस काम में प्रवृत्त हों। जो विश्व शांति के पैरोकार हैं, वे भी इस मंत्र का जाप करें क्योंकि आनेवाले युग में विभिन्न देशों के मध्य बहनेवाली नदियां ही युद्ध एवं अशांति का कारण बनेंगी।

वस्तुतः पृथ्वी पर बहती हुई ये नदियां उसकी देह पर लगे थर्मामीटर की तरह हैं, जो निरन्तर हो रहे जलवायु परिवर्तन, बढ़ते प्रदूषण एवं तापमान को दर्शाती हैं। नदियों के किनारे खड़े होकर या आसमान से देख कर हम उसके स्वास्थ्य को जान सकते हैं। यह समय कुंती (भारतीय दर्शन) के आदेश पर भीम बन कर भोगवादी आधुनिक जीवन-पद्धति रूपी राक्षस तक पहुंच, उसे समाप्त करने का है। यह जितनी जल्दी होगा नदियों के बहाने स्वयं को बचाने का कार्य हम उतना ही शीघ्र प्रारंभ होते देख सकेंगे।

लेखक, नर्मदा समग्र के प्रणेता, संस्थापक और पूर्व में केन्द्रीय पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्री रहे हैं।



रामराज्य

मनुष्य और प्रकृति का साहचर्य ही आदर्श है

राम के जीवन से हमें यह सीख मिलती है कि हमें प्रकृति के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिए

सुरभि तोमर

भा

भारतीय संस्कृति एवं प्रकृति का आदिकाल से गहरा संबंध रहा है। यदि हम राम के जीवन काल के बारे में बात करें, तो श्री राम ने हमें पग पग पर परंपराओं का सम्मान करते हुए प्रकृति के साथ चलने का संदेश दिया है। रामायण में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनसे हमें प्रकृति और प्रगति के बीच संघर्ष का नहीं, बल्कि सामंजस्य बिठाने का संदेश मिलता है।

राम प्रकृति के विभिन्न अवयवों को परिवार ही मानते थे। चित्रकूट में राम-भरत मिलाप के समय, राम भरत से उनके दुःखी होने का कारण जानने के लिए पूछते हैं, “तुम्हारे राज्य के वनक्षेत्र तो सुरक्षित हैं? तुम्हारी दूध देने वाली गायें तो कुशल से हैं ना?” भरत ने जो उत्तर दिया, वह पर्यावरण के प्रति

राम के जीवन से हमें यह सीख मिलती है, कि हमें प्रकृति के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिए और उसी सीमा तक उसके अवयवों का उपभोग करना चाहिए, जब तक उसके अस्तित्व पर संकट न आये। प्रकृति हमें सब कुछ देती है। हमें प्रकृति से छेड़छाड़ किये बिना धैर्य और विवेक के साथ उसका उपयोग करना चाहिए।

तुलसीदास जी लिखते हैं की वृक्ष से फल तोड़ कर खाना उचित है, किन्तु



वृक्ष को काटना गलत है। यदि गणित की भाषा में कहें, तो मूलधन को बनाये रखकर हमें ब्याज का ही उपयोग करना चाहिए।

प्रकृति के प्रति कृतज्ञता रखते हुए वन संपदा का उपभोग करना ही रामराज्य

राम के जीवन से सीखें

- प्रकृति के प्रति हमेशा कृतज्ञ रहना
- एक सीमा तक प्रकृति का उपभोग करना
- प्रकृति से छेड़छाड़ न करना
- प्रकृति का धैर्य और विवेक के साथ उपयोग करना

संवेदनशीलता का उत्कृष्ट उदाहरण है। भरत ने उत्तर दिया, “मेरी सेना और नगर वासियों के कारण आश्रम के वृक्षों, जल और भूमि को कष्ट न पहुंचे, इसलिए मैं यहां अकेला ही आया हूं।”

उस समय के वनक्षेत्रों का तुलसीदासजी ने श्रीरामचरितमानस में बड़ा ही मनमोहक वर्णन किया है। उस समय काफी बड़े भू-भाग पर वन क्षेत्र फैले हुए थे। ज्ञान विज्ञान के केंद्र, ऋषियों के आश्रम और वन में ही होते थे। प्रकृति की गोद में स्थित इन आश्रमों से ही हमारी सभ्यता और संस्कृति का प्रचार और प्रसार हुआ था। वनवास के दौरान राम चाहते, तो किसी भी राज्य या अपने ननिहाल से भी मदद ले सकते थे। लेकिन राम ने वनों में रहने वाले भील, वानर, केवट, निषाद जैसे आदिवासी जनजातियों को सहयोगी बनाया, उन्हें सम्मान दिया।

“सुमन वाटका सभा लगाइ,
विविध भांति कर जतन बनाई”
- श्रीरामचरितमानस

का आदर्श है। ये ध्यान रखना चाहिए कि प्रकृति प्रदत्त मूल संपत्ति को

क्षति न पहुंचाई जाये। सिर्फ इतना ही नहीं, राम के काल में वन क्षेत्रों की सतत वृद्धि के प्रयास भी लगातार किये जाते थे। उस समय वृक्षारोपण कार्य एक स्वाभाविक कृत्य था। राम-सीता के विवाह के बाद जब बारात लौट कर अयोध्या आई, तब अयोध्या में वृक्षारोपण किया गया था। राज्याभिषेक की तैयारी के अवसर पर गुरु वशिष्ठ मार्गों के दोनों ओर फलदार और छायादार वृक्ष रोपने का आदेश देते हैं।

श्रीरामचरितमानस में एक विवरण आता है, “सुमन वाटिका सभी लगाई, विविध भांति कर जतन बनाई” इसमें “सभी” शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ है वृक्षारोपण सभी को करना है।

श्रीरामचरितमानस में नगर वनों की अवधारणा भी मिलती है। यह बताया गया है कि नगर वन नगरों के किनारे या आस पास हो सकते हैं। इनसे प्रकृति के प्रदूषण के साथ साथ मनोवृत्ति के सुधार में भी सहायता मिलती है।

रामराज्य में पूरा मानव समाज पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशील था, इसलिए समुद्र भी अपनी मर्यादा में रहता था। रामायण में इस तरह के अनेक प्रसंग मिलते हैं। हम पर्यावरण संरक्षण गतिविधि के तहत प्रकृति और संस्कृति को एक साथ गूँथने का प्रयास कर रहे हैं। उस समय प्लास्टिक नहीं था, लेकिन अब प्लास्टिक कचरा गंभीर चुनौती बन गया है। हम “पॉलिथीन बंधन धरती वंदन” का एक अभियान चला रहे हैं, जिसका उद्देश्य है कि प्लास्टिक को घर से ही न निकलने दें। इसे अलग से इकट्ठा कर लिया जाये। हमने इसे ईको ब्रिक्स का नाम दिया है। हमारा आग्रह है की अधिक से अधिक लोग इससे जुड़ें।



पत्तल एक, फायदे अनेक

एक सांस्कृतिक जरूरत

आधुनिकता पर भारतीय परंपरा का प्रहार

कुलदीप नागेश्वर पवार

भारतीय संस्कृति प्रकृति पूजक रही है। भारत में संस्कृति और प्रकृति का आदिकाल से ही गहरा संबंध रहा है। भारतीय परंपरा सहज भाव से प्रकृति का संरक्षण करना सिखाती है, लेकिन विकास की चाह और आधुनिकता की चकाचौंध में परंपरा पीछे छूटती चली गई। इस कारण प्रकृति और संस्कृति के बीच दूरी बन गई। समय के साथ इनके मध्य दूरी बढ़ती जा रही है।

भारतीय संस्कृति और परंपरा में सत्ता की शक्ति से ज्यादा महत्व समाज की शक्ति को दिया जाता है। समाज के प्रबुद्ध एवं जागरूक नागरिक 'पर्यावरण संरक्षण गतिविधियों' के अंतर्गत इन दूरियों को पाटने का कार्य और प्रयास कर रहे हैं। हमारा उद्देश्य और संकल्प है कि प्रकृति और संस्कृति को एक साथ गूँथा जाए, ताकि वे फिर से एकाकार हो सकें।

हमारा लक्ष्य प्लास्टिक से मुक्त वातावरण बनाना है। इसमें कुछ कठिनाइयाँ भी हैं, क्योंकि प्लास्टिक हमारे जीवन में पूरी तरह से रच बस गया है। प्लास्टिक से मुक्ति के लिए दो समाधान हैं। प्लास्टिक का प्रयोग बंद करने के लिए इसका विकल्प तलाश लिया जाए। दूसरे प्लास्टिक कचरे का उचित ढंग से

हिवरे बाजार की इसी कामयाबी के कारण महाराष्ट्र सरकार इस गांव में एक ऐसा प्रशिक्षण केंद्र खोलने जा रही है, जहां महाराष्ट्र के सभी सरपंचों को प्रशिक्षण दिया जा सके।

निस्तारण किया जाए।

प्लास्टिक ओर थर्मोकोल का एक विकल्प हमारे समक्ष है 'पत्तल', जो सदियों से हमारी परंपरा में शामिल रही है। पत्तल का सामान्य अर्थ है पत्तों को जोड़कर बनाया हुआ थाली के समान एक बड़ा गोलाकार आधार, जिस पर भोजन परोसा और खाया जाता है। पलाश, महुए आदि के वृक्षों के पत्तों को छोटी-छोटी सीकों की सहायता से जोड़कर थाली के सदृश्य बनाये हुए गोलाकार आधार को ही पत्तल कहा जाता है। भारत में सदियों से विभिन्न वनस्पतियों के पत्तों से बनी पत्तल संस्कृति का अनिवार्य हिस्सा रही है। भारत में पत्तल बनाने और इस पर भोजन करने की परंपरा कब शुरू हुई, इसका कोई प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है, लेकिन यह परंपरा सदियों से चली आ रही है। भारतीय समाज में पुराने समय से ही शुभ कार्यों और अन्य उत्सवों में पत्तल में भोजन करने के लिए कटोरी, थालियाँ और प्लेटें बनाने का प्रचलन संपूर्ण भारत में है। भारत में कोई भी धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक उत्सव बिना पत्तल के अधूरा रहता था। इन समारोह में आने वाले अतिथियों को पत्तलों पर ही भोजन परोसा जाता था। ग्रामीण अंचलों में विवाहोत्सवों में खाखरे/पलाश के पत्तों से बने दोनों और पत्तों में ही बारातियों और

रिश्तेदारों को भोजन कराया जाता था। हलवाई की दुकान हो या चाट का ठेला या फिर मंदिरों में प्रसाद वितरण, सब जगह पत्तों से बने दोनों में ही व्यंजन परोसा जाता था। लेकिन अब समय के साथ यह प्रचलन भी कम होता जा रहा है। पत्तों के दोनों की जगह थर्मोकोल से बने उत्पादों ने ले ली है। जो पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। आधुनिकता की चकाचौंध में हमें ये सब बातें दकियानूसी और पिछड़ेपन का प्रतीक लगने लगती हैं, जबकि शोध से भी ज्ञात हो चुका है कि पत्तलों का उपयोग स्वास्थ्य के हिसाब से उच्च मापदंड वाला था।

पत्तल पर खाना सुविधाजनक और स्वास्थ्यप्रद माना जाता है। यही कारण है कि दक्षिण भारत में और आदि समाज में आज भी इनका उपयोग प्रचुरता से किया जाता है। पत्तलों का प्रयोग करने में संभवतया जाति प्रथा और छुआछूत का भी योगदान रहा हो। परंतु इसके उपयोग के पीछे सबसे बड़ा कारण इनका सुविधाजनक होना रहा होगा। क्योंकि इनके उपयोग के पश्चात इन्हें सरलता से फेंका जा सकता है। इनका निस्तारण करना भी सरल है। ये बड़ी आसानी से स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। इनसे पर्यावरण को भी कोई क्षति नहीं पहुंचती।

स्वास्थ्य लाभ : हमारे देश में मनीषियों ने कोई भी कार्य जो स्वास्थ्य के अनुकूल हो या पर्यावरण के, ऐसी सभी बातों को धर्म और परंपरा के माध्यम से हमारे जीवन से जोड़ दिया था। मानव स्वभाव की विशेषता है कि वह धर्म से संबंधित नियमों का अनुसरण आसानी से करता है। पत्तल पर भोजन करना भी इसी तरह की परंपरा बनाई गई थी। पत्तल पर भोजन करने से हमारे भोजन के साथ साथ संबंधित वृक्ष के औषधीय गुण भी मिल जाते हैं और मानसिक शांति और संतुष्टि भी प्राप्त होती है।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि अनेक वनस्पतियों की पत्तियों से तैयार होने वाले पत्तलों और उनसे मिलने वाले लाभों के विषयों में पारंपरिक चिकित्सकीय ज्ञान उपलब्ध है। परंतु आमतौर पर अपनी दिनचर्या में हम मुश्किल से पांच प्रकार की वनस्पतियों के पत्तों का ही उपयोग करते हैं। सर्वाधिक प्रचलन केले के पत्तों का है। इन पर परोसे गए भोजन को स्वास्थ्य के लिए लाभदायक बताया गया है। अपनी शुचिता और स्वच्छता के लिए भी केले के पत्ते सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। दक्षिण भारत में आज भी अधिकतर स्थानों पर पारंपरिक ढंग से केले के पत्तों पर ही भोजन परोसा जाता है। मान्यता है कि केले के पत्तों पर परोसे गए भोजन से चांदी के बर्तन में भोजन करने जैसा ही पुण्य और आरोग्य मिलता है। आजकल महंगे होटलों और रिजॉर्ट में भी केले के पत्तों का उपयोग किया जाने लगा है। सुपारी के पत्तों की पत्तल केरल में बनाई जाती है। सुपारी के पत्तों से प्लेट, कटोरी, थालियाँ, ट्रे आदि बनाई जाती हैं। आजकल इनका भी बहुत

प्रचलन हो रहा है। इनमें भोजन करना स्वास्थ्य के लिये लाभकारी है और जेब पर भी भारी नहीं पड़ता। आकार एवं गुणवत्ता से यह डेढ़ से दो रुपये के बीच में मिल जाती हैं।

पलाश के पत्तों की बनी थाली/पत्तल में भोजन करने से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ जाती है। कृमि, कफ, खांसी व पेट पाचन संबंधी व रक्त संबंधी अन्य बीमारी होने की संभावना बहुत कम हो जाती है। रक्त की



अशुद्धता के कारण होने वाले रोगों में पलाश के पत्तों का उपयोग अच्छा माना गया है। आमतौर पर पलाश लाल फूल वाला होता है। पर सफेद फूल वाला भी उपयोग किया जाता है। इस दुर्लभ पलाश से बने पत्तों को बवासीर के रोगियों के लिए लाभकारी बताया गया है। पलाश के पत्तों में भोजन करने से स्वर्ण के बर्तन में भोजन करने जैसा पुण्य और आरोग्य प्राप्त होता है।

जोड़ो के दर्द के लिए करंज की पत्तियों से तैयार की गई पत्तलों को उपयोगी बताया गया है। पुरानी पत्तियों की तुलना में नई पत्तियों के पत्तलों में भोजन करना अधिक गुणकारी बताया गया है। शरीर के किसी अंग ओर लकवा मार जाने की स्थिति में अमलतास की पत्तियों से बनी पत्तलें लाभकारी होती हैं।

अन्य लाभ : पत्तल सस्ती होने के साथ ही मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है और पर्यावरण को भी इससे कोई क्षति नहीं पहुंचती। धन की बचत के साथ ही इसके उपयोग में लाने से पानी की भी बचत होती है। क्योंकि इसे पानी से धोने की जरूरत नहीं पड़ती। सबसे महत्वपूर्ण झूठे पत्तलों को एक जगह जमीन में दबा देने से खाद का निर्माण किया जा सकता है। इस तरह निर्मित खाद बिल्कुल आर्गेनिक होती है। इसमें हानिकारक रसायन तत्व नहीं होते। इसकी मदद से बगैर रासायनिक खाद को प्रयोग में लाये मिट्टी की उपजाऊ क्षमता को बढ़ा जा सकता है।

पत्तलों की आवश्यकता की अधिक पूर्ति के लिए अधिक से अधिक वृक्ष उगाए जाएंगे, जिससे वातावरण में अधिक ऑक्सीजन उपलब्ध होगी। इससे वायु प्रदूषण भी कम होगा। पत्तल उपयोग में लाये जाने का मुख्य उपयोग है कि इनके

उपयोग में लाये जाने से नदियों को बहुत बड़े स्तर पर प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। जैसे कि हम सब जानते हैं कि बर्तन धोने के उपयोग में लाया गया पानी रसायन मिश्रित पानी होता है, जो घरों की नालियों से होते हुए अंत में किसी नदी या नाले में मिलता है और उन्हें प्रदूषित करता है। थर्मोकोल और प्लास्टिक का कचरा भी पर्यावरण को विभिन्न तरीकों से प्रदूषित करता है। पत्तलों को उपयोग में लाने से यह कचरा कम होगा। इससे सड़कों पर घूमती हुई गायें और अन्य पशुओं की पॉलीथिन से होने वाली मौतों पर भी अंकुश लगेगा।

पत्तल की प्लेटों के उपयोग से सिर्फ पर्यावरण की ही रक्षा नहीं होती, यह कारोबार लाखों को रोजगार उपलब्ध कराता है। इससे बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखंड, पश्चिम बंगाल, राजस्थान जैसे राज्यों में लोगो को रोजगार मिलता था। लेकिन धीरे धीरे जब पत्तों का प्रचलन कम होता गया, इनका व्यापार भी कम हो गया। यह कहना उचित होगा कि आधुनिकता ने इस कारोबार की कमर तोड़ दी है।

भारतीय संस्कृति कभी भी 'उपयोग में लाओ और फेंक दो' की प्रवृत्ति वाली संस्कृति नहीं रही है। यहां पर 'दादा ले, पोता बरते' वाला सिद्धांत चलता रहा है। किंतु मानव स्वभाव उपयोगिता के साथ-साथ सुविधाभोगी भी होता है। सुविधाजनक होने के कारण ही थर्मोकोल और प्लास्टिक के उत्पादों का उपयोग बढ़ता गया।

परिवर्तन जीवन का अनिवार्य अंग है। परिवर्तन से परंपराओं में निरंतरता और जीवंतता बनी रहती है। हमें चाहिए कि पत्तों की पत्तलों को आधुनिक ढंग से आकर्षित रूप देकर थर्मोकोल और पॉलीथिन के विकल्प के रूप में अपनाने के लिए लोगो को प्रोत्साहित करें। वैसे दोनो और पत्तलों को बनाने का कार्य वर्ष भर चलता है। लेकिन दशहरा और नवरात्रों के अवसर पर व्यापक स्तर पर भंडारों का आयोजन किया जाता है, जिसमें लाखों लोग भोजन ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त चैत्र नवरात्रि एवं विवाहों के मौसम में भी इनकी खूब मांग रहती है। हमें इन विकल्प की जानकारी आम लोगो तक पहुंचानी होगी, ताकि आम जन हर जगह पर होने वाले भंडारे, लंगर, विवाह तथा जन्मोत्सवों में भले ही 'उपयोग करो और फेंक दो' वाली सुविधा अपनाए, बस थर्मोकोल की जगह पत्तों से बने विकल्पों को अपनाए। पर्यावरण संरक्षण में हमारा यह गिलहरी जैसा सहयोग बहुत मायने रखता है।



पॉलिथीन बंधन-धरती वंदन ये प्रगति संगत है

पॉलिथीन से निकलने वाली विषैली गैसों हमारे स्वास्थ्य के लिए घातक है

डॉ. अनिल मेहता

इको ब्रिक्स को लेकर पर्यावरण गतिविधि द्वारा संचालित अभियान के संबंध में अक्सर कई तरह के प्रश्न पूछे जाते हैं। जैसे इस अभियान से जुड़कर कैसे हम सही अर्थों में धरती का वंदन कर सकते हैं? हम आपसी बातचीत में कहते हैं कि इको ब्रिक्स बनाकर पॉलिथीन के दैत्य को एक बोतल में बंद करना है। आखिर क्यों हम पॉलिथीन की तुलना किसी दैत्य या राक्षस से कर रहे हैं? इको ब्रिक्स में पॉलिथीन बंधन से कैसे पर्यावरण, प्रकृति, मानव समाज और संपूर्ण चराचर जगत की रक्षा हो सकती है? ‘‘पॉलिथीन बंधन-धरती वंदन’’ इस स्लोगन के विज्ञानीय निहितार्थ क्या हैं? इन सब प्रश्नों के उत्तर के लिए पहले आपको पॉलिथीन के बारे में जानना और समझना होगा।

सतही फैलाव को न्यूनतम करना

जब हम सिंगल यूज प्लास्टिक, विशेषकर पॉलिथीन, पाउच इत्यादि को एक लीटर की प्लास्टिक की ही बोतल में भर देते हैं, तो हम 100 वर्गफीट क्षेत्रफल धरती सतह पर या किसी जल स्रोत में फैल जाने वाले पॉलिथीन कचरे को मात्र 0.75 वर्गफीट सतही क्षेत्रफल में बंद करते हैं। एक लीटर की बोतल का सतही क्षेत्रफल लगभग पौन वर्गफीट होता है।

जब खुले में पॉलिथीन फैलता है, तो उसका सरफेस एरिया सूर्य व वातावरण के संपर्क में आता है। और यह भूमि, वायु, सतही व भूजल सभी के लिए प्रदूषण का प्रमुख कारण बन जाता है।

पॉलिथीन में हैं जहरीले व विषैले रसायन

पॉलिथीन में होते हैं ये रसायन

- थैलेट्स
- कैडमियम
- कोबाल्ट
- क्रोमियम
- लेड
- बीपीए

पॉलिथीन का मूल घटक पेट्रोलियम उत्पाद है। पॉलिथीन को लचीला (फ्लेक्सिबल), खींच सकने वाला (स्ट्रेचेबल), अधिक समय तक काम में आ सकने वाला (ड्यूरैबल), मजबूत, पारदर्शी या रंगीन, संपूर्ण प्रदर्शन (परफॉर्मेंस) को अच्छा बनाने, मुलायम, चिकना और अधिक वजन उठा सकने वाली, इसी प्रकार की कई विशेषताओं (फंक्शनल प्रॉपर्टीज) को विकसित करने के लिए पॉलिथीन की निर्माण प्रक्रिया के दौरान इसमें कई कार्बनिक व

अकार्बनिक रसायन मिलाए जाते हैं। इनमें थैलेट्स, कैडमियम, कोबाल्ट, क्रोमियम, लेड, बीपीए सहित

विविध प्रकार के दर्जनों विषैले (टॉक्सिक) रसायन सम्मिलित हैं। यद्यपि पॉलिथीन नॉन बायो डिग्रेडेबल है, अर्थात् जैविक रूप से विघटित नहीं होता, लेकिन फोटोडिग्रेडेबल अर्थात् सूर्य किरणों, ताप व अन्य वातावरणीय कारकों से इसका हानिकारक रूप में विघटन होता है। इसमें उपस्थित विषैले रसायन पिघल कर मिट्टी व पानी में चले जाते हैं।

भूमि, जल, पौधों, अनाज व फलों को विषाक्त करता है

पॉलिथीन

पॉलिथीन अत्यंत ही बारीक कणों में टूट जाता है, जिन्हें माइक्रो प्लास्टिक व नैनो प्लास्टिक कहते हैं। इनका माप एक मिलीमीटर के एक हजारवें से लेकर दस लाखवें भाग जितना महीन होता है। खुले में विसर्जित पॉलिथीन के विषैले रसायन व माइक्रोप्लास्टिक-नैनो प्लास्टिक कण मृदा, मिट्टी (सॉइल) की उपजाऊ संरचना, पोषक तत्वों का प्रवाह, लाभदायक मृदा जीवाणुओं की संख्या व गतिविधि सहित मृदा की मूल प्रकृति को तहस



नहस करते हैं।

ये विषैले तत्व व कण पौधों की जड़ों द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं। यही कारण है कि अनाज से लेकर फलों, सब्जियों में अब पॉलिथीन रसायनों का संदूषण है एवं इनमें माइक्रोप्लास्टिक है।

पशु व जीवों में जा रहा है जहर

खुले में विसर्जित होने पर इन्हें पशु खा लेते हैं। इससे पशु बीमार हो जाते हैं। उनसे मिलने वाले खाद्य पदार्थ गंभीर रूप से संदूषित (कॉन्टामिनेटेड)

होते हैं। इस दृष्टि से निरामिष व सामिष, शाक व मांस दोनों प्रकार के खाद्य पदार्थ जहरीले हो गए हैं। गाय के दूध से लेकर प्रसूताओं के दूध सभी में पॉलिथीन का संदूषण है।

जल व जलीय जीवों में विषाक्तता



जल स्रोत-कुंओं, बावड़ियों, नलकूप, पोखर, तालाब, नदी में जाकर पॉलिथीन के विषैले रसायन व माइक्रोप्लास्टिक कण पानी को प्रदूषित करते हैं। इससे मछलियों व अन्य जलचरों व जलीय वनस्पति में पॉलिथीन रसायन की मात्रा खतरनाक स्तर तक होती जा रही है।

मनुष्यों के लिए भी विषैला है पॉलिथीन

इस प्रकार के जल को पीने से यह समस्त विषैले रसायन व माइक्रोप्लास्टिक कण हमारे शरीर में जमा हो रहे हैं। ये रसायन लिवर, किडनी, पेट के लिए तो कैसरकारी व मस्तिष्क रोगों के कारक तो हैं ही, मुख्यतया इनका दुष्प्रभाव पुरुषों व महिलाओं की प्रजनन प्रणाली, अन्तःस्त्रावी ग्रंथि प्रणाली (एंडोक्राइन ग्लैंड सिस्टम) व स्नायु तंत्र (नर्वस सिस्टम) पर पड़ता है।

ये विषैले रसायन एस्ट्रोजन एक्टिव व एंडोक्राइन डिसरप्टर हैं। ये हमारे शरीर की प्राकृतिक हॉर्मोन व्यवस्था पर दुष्प्रभाव डालते हैं। इसके कारण नपुंसकता, बांझपन, जननांगों में विकृति, स्तन, गर्भाशय व प्रोस्टेट के कैसर, बालिकाओं में जल्दी मासिक धर्म आना, किशोरों-युवाओं में अति सक्रियता व मादाओं जैसे लक्षण, थायरॉइड संबंधी व डायबिटीज बीमारियां आम हो गई हैं। माइक्रोप्लास्टिक व नैनो प्लास्टिक हमारे श्वसन द्वारा भी शरीर में प्रवेश कर श्वसन संबंधी रोग पैदा कर रहे हैं।

जलवायु परिवर्तन संकट को बढ़ाता है

पॉलिथीन

यही नहीं, खुले में विसर्जित हुए पॉलिथीन प्लास्टिक

से कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, मीथेन, इथाइलीन, प्रोपेन सहित कई विषैली गैसों निकलती हैं। ये जलवायु परिवर्तन संकट को और बढ़ाती हैं व मानव स्वास्थ्य के लिए जहरीली हैं। जब कचरा स्थलों पर

बनाएं। और फिर इस इको ब्रिक्स का कोई रचनात्मक एवं उत्पादक उपयोग करो। दीवार, फुटपाथ, गमले, कचरा पात्र, फर्नीचर से लेकर सड़क निर्माण व सीमेंट निर्माण संयंत्रों की भट्टियों में इको ब्रिक्स का उपयोग किया जा सकता है। इको ब्रिक्स से बनी सड़क ज्यादा मजबूत व ड्यूरेबल होती है।

आह्वान

आइए, कचरा पृथक्करण (सेग्रिगेशन) को घर घर के स्तर पर प्रारंभ करते हुए, इको ब्रिक्स अभियान से जुड़े। इको ब्रिक्स अभियान 5 R का प्रत्यक्ष व व्यावहारिक प्रयोग है। इसमें हम पॉलिथीन कचरे की समस्या का रिड्यूस, रिसायकल, रिफ्यूज, रिन्यूअल व रियूज, इन पांच आयामों से समाधान कर प्रकृति वंदन-धरती वंदन-मानवता वंदन कर पाएंगे।

पॉलिथीन अन्य कचरे के साथ जलता है, तो फ्र्यूरेन, डाईऑक्सीजन सहित कई विषैली गैस बनती है, जो ऊपर वर्णित समस्त रोगों की तीव्रता को बढ़ाती है।

ये विषैली गैसों वनस्पति एवं पेड़ पौधों को भी गंभीर हानि पहुंचाती है। पॉलिथीन खुली नालियों, सीवर में जमा होकर प्रवाह को बाधित करती हैं। जमा गंदगी से मच्छरों की समस्या बढ़ने के कारण बीमारियां बढ़ती हैं। और, इससे विभिन्न प्रकार की पारिवारिक, सामाजिक व आर्थिक समस्याएं पैदा हो रही हैं।

इको ब्रिक्स है सरल व

प्रभावी समाधान

मानव समाज, वनस्पति जगत, जीव जगत सहित संपूर्ण प्रकृति के लिए संकटकारी इन समस्त समस्याओं का समाधान है कि हम पॉलिथीन कचरे को एक बोतल में बंद कर “इको ब्रिक्स”



कोरोना

धरती का अस्तित्व खतरे में

महामारी आत्मनिर्भर बनने का एक सनहरा और चुनौतीपूर्ण अवसर है

राणा प्रताप सिंह

♦ गांवों की अर्थव्यवस्था सदियों से कृषि, बागवानी और पशुपालन पर आधारित है, पर अब स्थितियां बदल रही हैं। किसानों की अगली पीढ़ी खेती की जगह शहर की मजदूरी पसंद करने लगी है, क्योंकि कृषि में अब लाभ नहीं है। जलवायु परिवर्तन से कृषि का संकट और बढ़ गया है। खेती की उपज की अनिश्चितता के साथ साथ बाजार की स्थितियां भी बहुत अनिश्चित हैं। कृषि क्षेत्र पर पर्यावरण क्षरण की मार हरित क्रांति के दिनों से ही पड़ रही है। कृषि की लागत बढ़ती जा रही है, लेकिन उपज ठहरी हुई है। कृषि उत्पादों के मूल्य लागत के अनुसार बहुत कम हैं। कृषि रसायनों के बढ़ते उपयोग से ऐसे जीवाणु, जो मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाते हैं, नष्ट हो गए हैं। खेत की मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा घटती जा रही है। मिट्टी, पानी, हवा और भोज्य पदार्थ विषाक्त हो गए हैं। फसल, पशुओं और मनुष्य की बीमारियों में बढ़ोतरी हुई है। फसलों के जैविक प्रबंधन की तैयारियां तथा पशुओं एवं मनुष्य के लिए चिकित्सा सेवाएं अपर्याप्त हैं। इस परिप्रेक्ष्य में कृषि क्षेत्र और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा को समझना बहुत आवश्यक है।

क्या कृषि क्षेत्र को पूरी तरह बाजार के हवाले किया जा सकता है। भारतीय परिदृश्य में संभवतः इसके लिए उपयुक्त स्थितियां अभी नहीं हैं। लेकिन धीरे धीरे कृषि को इससे जुड़े लघु उद्योगों तथा विपणन व्यवस्थाओं के साथ हरित उद्योगों के बड़े तथा रोजगारपरक नेटवर्क में बदला जा सकता है। अभी तो इसे राजकीय और वैज्ञानिक समर्थन की बहुत आवश्यकता है।

आकलन का कोई भरोसेमंद, पारदर्शक और वैज्ञानिक तरीका स्वतंत्रता के सात दशकों के बाद भी स्थापित नहीं किया जा सका है। जो गांव दर गांव हर वर्ष होने वाले विकास के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं



पर्यावरणीय सूचकांकों को पारदर्शक तरीके से हमारे सामने रख सके। दुर्भाग्य से राष्ट्रीय एवं वैश्विक विचार प्रणाली में विज्ञान को मात्र एक तकनीकी विक्रय योग्य वस्तुओं के निर्माण का साधन माना गया है। ऐसा पिछले लगभग दो दशकों से बाजार तंत्र और वैश्विक विपणन प्रणाली को ग्लोबलाइजेशन के नाम पर अंगीकृत किये जाने के बाद अधिक हुआ है। विज्ञान की वास्तविक शक्ति इसके दर्शन और कार्यविधिओं में निहित है और किसी क्षेत्र में योजनाओं की सफलता के लिए इसके निरंतर मूल्यांकन आधारित सुधारों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

कोरोना और लॉकडाउन से त्रस्त प्रवासी मजदूरों के गांव वापसी की तकलीफों की गूंज थोड़े दिनों के लिए ही बहुत बड़ी हो गई थी। पहली बार इतने लोग पैदल या साइकिल से हजारों मील दूर शहर से गांव जा रहे थे। इन प्रवासी श्रमजीवी कामगारों को पर्याप्त सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संरक्षण दिए बिना हम बड़ी अर्थव्यवस्था एवं नया विकसित समाज नहीं बना सकते। यह घटना गांवों के विकास के लिए एक नए दृष्टिकोण की मांग करती है।

हर देश और प्रदेश की अपनी अलग तरह की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियां हैं। प्राकृतिक संसाधनों और मानवीय संसाधनों में

कोरोना संकट ने शहरी क्षेत्रों के विकास को लेकर नई संभावनाओं की तलाश का रास्ता दिखाया है। कई विकसित देशों ने सैटेलाइट सिटी के मॉडल पर जनसंख्या के घनत्व को केंद्रित होने से रोका है।

स्वतंत्रता के बाद से ही कृषि और गांवों के विकास की अनेकों योजनाएं चलती रही, पर कृषि और कृषकों की स्थितियों में पर्याप्त सुधार नहीं हुआ। सरकार की योजनाओं का वित्त और कृषि विभागों द्वारा कृषकों को कितना तकनीकी लाभ मिला तथा यह कृषि सुधारों में कितना प्रभावकारी रहा, यह कहना बहुत कठिन है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें, तो हमारे देश में गांवों से जुड़ी विकास योजनाओं के प्रभाव

भी एकरूपता नहीं, तो विकास का स्वरूप एक जैसा कैसे होगा। एक राष्ट्र के रूप में हमें कम भौगोलिक क्षेत्र में सफल होने वाला प्रकृति संगत धारणीय विकास मॉडल निर्मित करना होगा।

वैश्विक बाजार और बहुराष्ट्रीय कंपनियां इस दौर में अतिमानवीय तकनीकों, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, बिग डेटा एनालिसिस, रोबोटिक्स और ऑनलाइन दुनिया की तैयारी की तरफ उन्मुख हैं, जिसमें अकुशल और अर्धकुशल श्रमशक्ति की आवश्यकता लगातार घटती जाएगी। इन सब भविष्योन्मुख तकनीकों को समाहित करते हुए भी यदि हम अपनी इस बृहद जनसंख्या को रोजगार देना चाहते हैं, तो हमें इनकी कुशलता बढ़ाने की योजनाओं के साथ स्थानीय स्तर पर लघु एवं मझौले उद्योगों का बड़ा तंत्र खड़ा करना होगा। कोरोना काल की चुनौतियों को समझते हुए भारत और कई अन्य देशों की सरकारों ने इस आत्मनिर्भर एवं धारणीय विकास के महत्व को समझा है, तथा उचित योजनाएं बनाई हैं, पर इसे जमीन पर उतारने के लिए एक नए तरह की भरोसेमंद और वैज्ञानिक कार्यप्रणाली, प्रगति के नियमित मूल्यांकन तथा उचित प्रबंधन की आवश्यकता होगी।

जब प्रवासी श्रमिक बड़ी संख्या में गांवों के लिए निकल पड़े, तब सबका मन आशंकित था कि इनके कारण गांवों में कोरोना के सामुदायिक संक्रमण हो जाएंगे। ऐसे में ग्रामीण इलाकों की जर्जर स्वास्थ्य



व्यवस्था को संभाल पाना कठिन होगा। पर ऐसा नहीं हुआ। गांववासियों के रहने के तौर तरीके, उनकी मजबूत रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा उनके संघर्षशील आत्मविश्वास ने सभी आशंकाओं को गलत साबित कर दिया।

महानगरों की घनी आबादी के बीच कोरोना का संकट लगतार भयावह होता जा रहा है। शहरों का रिंग रोड आधारित सीमाहीन फैलाव, झुग्गी झोपड़ी और अनियोजित आबादी वाले क्षेत्र तथा बहुमंजिला इमारतों वाले घने क्लस्टर, बाजारों की भीड़ तथा घटती रोग प्रतिरोधक क्षमता, कोरोना काल में बड़े शहरों और महानगरों के नए संकट के रूप में उभरे हैं। कोरोना संकट ने शहरी क्षेत्रों के विकास को लेकर नई संभावनाओं की तलाश का रास्ता दिखाया है। कई विकसित देशों ने सैटेलाइट सिटी के मॉडल पर जनसंख्या के घनत्व को केंद्रित होने से रोका है। रहवास के इस मॉडल को कस्बों और गांवों तक विस्तार देकर जनसंख्या और साधनों में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय संतुलन बनाया जा सकता है।

कोरोना संकट में ऑनलाइन काउंसलिंग, शिक्षा, व्यापार एवं मीटिंगों की आवश्यकता और इनके लिए उपलब्ध एप्स की मांग अचानक बहुत बढ़ गई है, पर इसमें भी गांवों की शिक्षा बुरी तरह प्रभावित हो रही है। गांवों में नियमित रूप से नेट की उपलब्धता न होना, मोबाइल चार्ज करने के लिए बिजली की निरंतरता का अभाव तथा विद्यार्थियों के पास स्मार्टफोन, लैपटॉप, कम्प्यूटर की उपलब्धता न होना और इनके प्रयोग की आर्थिक क्षमता प्रश्नों की नोंक पर टंगी है। इस तरह हमारी एक बड़ी आबादी वाले गांव

और उसके युवा, जो शिक्षा, समृद्धि, स्वास्थ्य और व्यापार जैसे क्षेत्रों में पहले से पिछड़े हुए हैं, ऑनलाइन तकनीकों में भी पिछड़ते जा रहे हैं।

हरित क्रांति की रासायनिक खेती ने अनाज का उत्पादन तो बढ़ाया, परंतु इसका लाभ देश के किसानों की जगह बीज, खाद, कीटनाशक बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अधिक हुआ। इसके विपरीत जैविक कृषि पद्धतियों को अपनाने से कृषि आदानों जैसे बीज, पौधे, जैविक खाद, जैविक कीटनाशक, छोटे कृषि उपकरण तथा सिंचाई के नवीन साधन एवं सौर ऊर्जा से चलने वाले उपकरणों के उत्पादन के लिए लघु उद्योगों की बहुत संभावना है। पर यह मात्र किसानों और ग्रामवासियों के ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता। सरकारों और शहरी नागरिक समाज को इस पर पूरी गंभीरता से तथा पर्याप्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण से काम करना होगा।

कृषि क्षेत्र में अन्न के अतिरिक्त दालों, तिलहनों, सब्जियों, फलों, मसालों, औषधी एवं सुगंधित तेलों, रेशों, कागज एवं लकड़ी के लिए उगाए जाने वाले पेड़ पौधों के साथ साथ जैव ईंधन के लिए उगाए जाने वाली फसलों के लिए नए तरह के पारिस्थिकी तंत्र के निर्माण से नई तरह की धारणीय तथा पर्यावरणीय एवं स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित खाद्य सुरक्षा को स्थापित किया जा सकता है। जमीन की कमी तथा बढ़ती आबादी के बावजूद नदियों के किनारे बहुत बड़ी अनुपजाऊ भूमि अभी खाली पड़ी है, जिसका उचित उपयोग किया जाना बाकी है। ग्रीन हाउस, पॉलीहाउस तथा बहुमंजिला खेती को जैविक साधनों के साथ प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है।

ग्रामीण विकास में कृषि एवं अन्य उत्पादों की छंटाई, पैकेजिंग, भंडारण एवं विपणन का एक नवीन तंत्र स्थापित किया जाना है, जिसमें लघु उद्योगों की श्रृंखला की अपार संभावनाएं हैं। मिट्टी के बर्तन, खिलौने, बांस और मूँज के तमाम नए तरह के उपयोगी सामान, केले एवं नारियल के खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त अनेक तरह की वस्तुओं का निर्माण और विपणन हो सकता है, जो ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में मील का पत्थर सिद्ध होगा। याद रखिए कि संकट से भी सीखा जा सकता है। यदि कोरोना संकट एक आत्मनिर्भर राष्ट्र के संकल्प को आगे बढ़ाने में हमें प्रेरणा दे सके, तो हम संकट को सीख में बदलने का साहस भरा काम कर सकते हैं।

लेखक बाबा साहब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के पर्यावरण विज्ञान विभाग में प्रोफेसर एवं राज्य पर्यावरण प्रभाव आकलन प्राधिकरण, उत्तर प्रदेश सरकार के अध्यक्ष हैं।

इको-ब्रिक्स

पृथ्वी को प्लास्टिक और पॉलीथीन से बचायेगा

पर्यावरण को दुरुस्त रखने का ये कारगर तरीका है
कविता मिश्रा

वर्तमान समय में प्लास्टिक हमारी ज़िंदगी का सबसे जहरीला प्रदूषण है। इसके बावजूद भी यह हमारे जीवन का एक अहम हिस्सा बना हुआ है। यह एक नॉन बायो डिग्रेडेबल पदार्थ है, जो जहरीले रसायनों से बना होता है और हमारी धरती, हवा और पानी सबको प्रदूषित करता है। प्लास्टिक के कूड़े को सुरक्षित रूप से निस्तारित करने का कोई उपाय आज भी हमारे सामने उपलब्ध नहीं है।

आसानी से उपलब्ध होने के चलते यह हमारे लिए उपयोगी हो सकता है, लेकिन स्वास्थ्य की दृष्टि से यह हमारे लिए बिल्कुल भी उपयोगी नहीं है। वर्तमान में इसका सबसे अधिक उपयोग पेयजल की बोतलों में, दूध व तेल की पैकिंग में, शीतल पेय पदार्थों की पैकिंग में, दवाओं की पैकिंग आदि में प्लास्टिक की

इसलिए प्लास्टिक के नुकसान से बचने का उपाय है कि हम इको ब्रिक्स के माध्यम से पर्यावरण का ध्यान रख सकते हैं, क्योंकि प्लास्टिक का उपयोग पृथ्वी पर रहने वाले प्रत्येक जीव के लिए खतरनाक है।



पूरे भारत में लोग रोजाना दो करोड़ प्लास्टिक की बोतलें कचरे में फेंकते हैं। इसी कारण आप कहीं भी घूमने जाएं, हर जगह ये प्लास्टिक की बोतलें आपको मिल जाएंगी। प्लास्टिक की बोतलें मात्र 8 से 10 प्रतिशत ही रिसाइकिल हो सकती हैं। यानी हमारी आज की इस गलती का परिणाम आने वाली कई पीढ़ियों को भुगतना पड़ सकता है।

बोतलों के रूप में या प्लास्टिक के पैकेट के रूप में किया जाता है।

पूरे भारत में लोग रोजाना दो करोड़ प्लास्टिक की बोतलें कचरे में फेंकते हैं। इसी कारण आप कहीं भी घूमने जाएं, हर जगह ये प्लास्टिक की बोतलें आपको मिल जाएंगी। पर्यावरण विशेषज्ञों के अनुसार, प्लास्टिक की ये बोतलें मात्र 8 से 10 प्रतिशत ही रिसाइकिल हो सकती हैं। आसान भाषा में कहें तो हमारी आज की इस गलती का परिणाम आने वाली कई पीढ़ियों को भुगतना पड़ सकता है।

प्लास्टिक की उत्पादन व निस्तारण-प्रक्रिया, दोनों ही पर्यावरण के लिए अत्यधिक नुकसानदायक है।

प्लास्टिक को कम करने का सबसे कारगर तरीका है इको ब्रिक्स। प्लास्टिक की इन खाली बोतलों में प्लास्टिक कचरा भरा जाता है। उसके बाद बोतलों को बंद करके ईंटों की जगह इस्तेमाल किया जाता है। प्लास्टिक की बोतलें ईंटों की तरह मजबूत और टिकाऊ होती हैं। ऐसा करके पर्यावरण को फायदा पहुंचाया जा सकता है।

परिवर्तन आसानी से नहीं होता, लेकिन जब कोई परिवर्तन हो जाता है, तो उसे बदलने में भी वक्त लगता है, इसलिए जाहिर सी बात है की लोग अचानक से प्लास्टिक का उपयोग बंद नहीं कर देंगे। ऐसे में जो प्लास्टिक हमारे आस-पास मौजूद है, उससे हम इको ब्रिक्स बना सकते हैं।

लोगों को यह समझने की जरूरत है कि यह प्लास्टिक उनके जीवन के लिए कितना नुकसानदायक है, जिसे वो अपनी ज़िंदगी का एक अभिन्न हिस्सा मान बैठे हैं। बहुत सारे ऐसे लोग हैं, जिन्हें प्लास्टिक से होने वाले नुकसान का पता ही नहीं है। इसलिए ऐसे लोगों को विज्ञापन एवं जनचेतना के माध्यम से जागरूक करने की आवश्यकता है। और इको ब्रिक्स के माध्यम से हम प्लास्टिक प्रदूषण पर नियंत्रण लगा सकते हैं।

ECO-BRICKS

NEED OF THE HOUR

IT REQUIRES CHANGE IN OUR ATTITUDES AND COLLECTIVE EFFORTS TO COMBAT THE MENACE OF PLASTIC WASTE

DHANASHREE GUJAR



AS THE FAMOUS Persian saying goes “All fingers are not the same” The saying emphasizes the fact that all the 5 fingers of our hand have different names, sizes, shape and orientation. They are all unique and serve different purposes but when used together are a very important part of our daily existence. Similarly, It can be that not all people are the same. We look similar and belong to the same species but there can never be a comparison between the thoughts and ideals of two individuals. Each of us has his/her set of responsibilities towards society. We cannot undermine or give more importance to anyone. But, as each of us takes every little effort towards the betterment of society, together these efforts become equally important and add up to bring substantial change in the bigger picture. India is a big nation with a huge

population and faces a lot of hurdles in the path of bringing about even the smallest change in any of our existing systems. It is logically impossible to expect “one” common solution for everyone.

As an example, while some people can afford to live a zero-waste life, others might not have that kind of time, exposure, or resources to do the same. While some people are knowledgeable enough to segregate their waste and religiously follow the 4Rs of waste, a huge part of the Indian population still struggles to be entitled to the bare minimum services of waste collection in their neighbourhoods. Sadly, this basic service of regular waste collection is still a privilege for many in India.

The above example has been highlighted just to provide an outlook on how diversified the issues of waste can be in a country like India. This also brings to notice that how one single solution cannot be implemented for the different strata of society. There will always be a bunch of different solutions that are driven by the accessibility of resources to a person.

However difficult the scenario of waste management in India may seem, believe it or not, there are a few cities where the waste management systems are working efficiently. The important factor of such systems that manage to function at this rate of efficiency is the active participation of citizens. These efforts go on to prove that waste can truly be wealth if handled well. But on the other hand, there are cities

where even the initial steps of waste segregation haven't been implemented.

For such cities and communities, we have come up with a simple but effective idea of Eco-bricks to manage their plastic waste at home, hassle-free. These people can now choose not to allow their plastic waste to end up in the ocean or dumping sites. So, if you are lucky enough to have facilities to segregate and recycle all your plastic waste including your single-use plastic, we really appreciate your efforts in doing so. But just in case you do not, we have got you covered. You can incorporate the habit of creating eco-bricks and throw all your complains of an inefficient waste collection service in the trash.

Eco-bricks is a very effective method of disposing of all the single-use polythene waste. All you need to do is segregate

and art installations. For the utilization of eco-bricks on a community level, there needs to be a robust system for collection of these bricks from all over the city. There needs to be a team of people or a collection centre that allows people to deposit the eco-bricks that they have created. But before we get ahead of ourselves, the first key step

to building this successful system would also be to create awareness among the

slogan to "my waste my responsibility". Eco-bricks is a good initiative to make people aware of the need for waste seg-

PEOPLE'S PARTICIPATION

However difficult the scenario of waste management in India may seem, believe it or not there are a few cities where the waste management systems are working efficiently. The important factor of such systems that manage to function at this rate of efficiency is the active participation of citizens.

regation and it will also help people take baby steps towards forming a healthy habit of segregation.

PROBLEM OF PLENTY

India is a big nation with a huge population and faces a lot of hurdles in the path of bringing about even the smallest change in any of our existing systems. It is logically impossible to expect "one" common solution for everyone. While some people can afford to live a zero-waste life, others might not have that kind of time, exposure, or resources to do the same.

your single-use polythene from your day to day waste and put it in a plastic bottle instead of your dustbin. A single bottle of 2-litre capacity can easily consume plastic waste generated in a month by one household. These plastic stuffed bottles aka eco-bricks have a wide range of applications. They can be used to build tree guards, outdoor furniture, footpaths

citizens.

Eco-bricks will not only solve the issue of single-use polythene going to dumping sites, but it will also make people responsible for handling their waste. It is high time that people take responsibility for their own waste. Enough of the "not in my backyard" attitude; it's time to change our

According to the Centre of Biological Diversity, 100,000 marine animals are killed by plastic bags annually. Eco-bricks can play an important role in saving the lives of these animals. Currently, eight million tonnes of plastic waste enter the ocean per year as stated by MPCB. Eco-bricks can effectively divert a considerable amount of that waste and reduce the threats to aquatic life. While our main aim is to reduce the use of plastic in the first place, we need to make sure that whatever plastic waste generated is disposed off safely. In areas where recycling facilities are not available, Eco-bricks are the best way to cope up with our waste.

We all dream of a waste-free India, where every single bit of waste is recycled and reused but till then let's do what needs to be done on priority at the moment.

So, let us start eco-bricking.

ECO-BRICKS

WILL MATTERS

FROM CROCKERY TO CLIMATE, NAMRATA CHOURASIYA HAS DONE IT ALL

SUBHI VISHWAKARMA



ONE CAN GET inspired from anywhere if there is an intent of doing anything for the society and Namrata Chourasiya has been an example of it. She always has the intent and passion to do something for the society especially on environment-related issues and she got inspired for it during a school competition on Eco-Bricks.

Namrata Chourasiya is not limited only to the doors of the kitchen and she has expanded her horizons by doing various activities. She not only understands the importance of recycling the plastic waste which is the need of the hour but also works for the same so that she can contribute to society. She got to know about the eco-bricks during a school competition and the concept of Eco Bricks was as creative as Namrata was with her innovative brain.

May it be old used bottle's for the beautiful terrace garden, to used baskets for beautiful pots, oil cans to flower pots, waste cartoons to an amazing shelf, to a shrivel tree to drawing rooms attraction, she was herself a pool of ideas and concept like Eco-Brick added another dimension to her creativity and she started making Eco-Bricks table with cushions on the top. Even she was amazed at the durability of a waste-filled bottle and wishes to make it more for her family members, with her creation. She is a social media star of her family too as everyone started asking about

It's all about recycling the plastic waste which is the need of the hour. Not confined to kitchens, Namrata has worked on pollution front as well.

her new creation and in the process, Namrata used to motivate others too.

She suggests that anyone can make the lining of their home garden by these Eco-Bricks then bricks, it's so easy to make.

Namrata is setting an example and motivation for the women who are supposed to live in kitchens and only dealing with crockery's, but by her small step, Namrata is extending her helping hands to the biggest problem of the decade "pollution resulting in climate change". Namrata does her part every day. Do you...?

EARTH DAY

PROTECTING PLANET FROM POLLUTION

2020 MARKS THE 50TH ANNIVERSARY OF EARTH DAY WHICH SETS THE GOALS FOR
SHAPING THE FUTURE OF 21ST CENTURY

PROF. M. SATISH KUMAR

EARTH DAY FOUNDED by US Senator Gaylord Nelson on April 22, 1970, presents a framework to educate the society about the significance of our planet earth and its environment. Since then it has become an annual event celebrated around the world to demonstrate global support for the protection of our Paryavaran or Environment. The focus is on pollution, deforestation, sustainability, etc. Thus, following this, June 5th, 1974 became the World Environment Day, in order to raise awareness about reducing pollution, overpopulation, global warming and unsustainable consumption.

The idea before celebrating Earth Day is to protect the planet from pollution and deforestation. By taking part in activities like picking up litter and planting trees, we're making our world a happier, healthier place to live. For the first time in human history, Earth Day gave a voice to an emerging public consciousness about the state of our planet. Today the divide between the Rich and Poor countries are

rapidly shrinking due to profligate consumption patterns and the creation of unsustainable wastes. This also compounds air pollution with differential levels of toxic and noxious gases being dumped into the environment. In fact, smells of air pollution in cities and towns was commonly accepted as the smell of prosperity by the vast legion of rural-urban migrants. We compromised everything to secure livelihood and prosperity for our family. Indeed, the polluted environment threatens human health.

Vedas and the relevance of the Assisi Declarations

N. J. Lockyer (1894:6) in his classic Dawn of Astronomy declared that, "The Vedas, in fact, is the oldest book in which we can study the first beginnings of our language and of everything which is embodied in all the languages under the sun. The oldest and most primitive form of Aryan-nature worship".

In the Vedas, the gods are called 'Devas', which means 'bright' 'brightness' or 'light' being one of the most general attributes shared by the various manifestations of the deity". The Assisi Declarations (1987) was a gathering of all world religions which was established to help reinforce the critical role of religions in the protection of our planetary health. In

this Declarations the Hindu perspective included the following statements:

- The human role is not separate from nature. Everything in the universe, including beings and non-beings, is pervaded by the same divine spiritual power.
- Nature is sacred and the divine is expressed through all its forms. Reverence for life and ahimsa (non-violence) is an essential principle.
- Nature cannot be destroyed without humanity destroying itself.

“The Earth is our mother and we are all her children”.

Ancient Indian Spiritualism and Environmentalism

In our ancient spiritual tradition, humans were considered as part of nature or ‘Panchabuttas’. Our Hindu traditions, our living cultural heritage is a testimony to this unchanging cycle of life. Our Vedas, Puranas, Upanishads and indeed our incredible ballads of Ramayana, Mahabharata and Discourses of the Bhagawad Gita continues to reinforce the significance of our environment from time immemorial.

The key idea is that both the sentient and insentient beings are infused by the same level of spiritual consciousness and power required to maintain the balance among the 5 elements of this universe. Such a sense of spiritualism is enabling and reinforces the concept of individual empowerment, in that it secures the sense of sovereignty, a sense of freedom among everything around us. Divinity in Hinduism thus reflects such a sense of sovereignty. The human race in its totality

is seen as being an integral part of the multitudinous life forms and not apart from it, as reiterated by the Darwinian and the Judeo-Christian explanations.

Thus, the Atharva Veda presents a magnificent Hymn to the Earth which is replete with incantations about the significance of ecological and environmental values. The following verses are taken from this extraordinary hymn is a testimony to this



ancient wisdom:

- a) Earth, in which lie the sea, the river and other waters, in which food and corn-fields have come to be, in which lives all that breathes and that moves, may she confer on us the finest of her yield.
- b) Earth, in which the waters, common to all, moving on all sides, flow unfailingly, day and night, may she pour on us milk in many streams, and endow us with lustre.
- c) May those born of thee, O Earth be for our welfare, free from sickness and waste. Wakeful through a long life we

shall become bearers of tribute to thee.

- d) Earth, my mother, set me securely with bliss in full accord with heaven, O wise one, uphold me in grace and splendour.

Not only in the Vedas, but it is instructive to note that later scriptures of the Upanishads, the Puranas and subsequent texts, such a Hindu view of nature

remain firmly endorsed. In other words, a reverence for life and an awareness that the great forces of nature, e.g. the earth, the sky, the air, the water, fire and ether, including plants and trees, forests and animals, are seen as being cosmically bound to each other within the cyclic rhythms of nature and of the universe. Interestingly the divine is never exclusive to creation but manifests itself through the natural phenomena. A case in point is expressed by the Mundaka Upanishad, where divinity is described as:

“Fire is his head, his eyes are the moon and the sun; the regions of space are his

ears, his voice the revealed Veda; the wind is his breath, his heart is the entire universe; the earth is his footstool, truly he is the inner soul of all”

In the same manner, the animal world also receives

MYTHOLOGY HAS IT ALL

Interestingly the divine is never exclusive to creation but manifests itself through the natural phenomena.

the very same care and consideration. One can find numerous instances in the Hindu texts exhorting kind and compassionate treatment of all animals, including cows, dogs, peacocks, tigers, elephants and snakes. Diverse Hindu iconography and mythology provides insight into the close relationship between various deities and their favoured animals and birds. Each of these creatures thereby represents immanent or latent powers derived by the association to these deities or divinity.

In addition, a unique perspective on the evolution of life on our planet earth is afforded by the Vaishnava tradition, which is distinctly separate from Darwinian versions of the ‘survival of the fittest’. Here evolution is symbolized by a series of divine incarnations, beginning with fish, moving through chains of amphibious forms and mammals, and on to human forms. Life forms attain the highest level of excellence as a human, with embedded consciousness. In other words, humans did not spring out as fully formed to dominate lesser forms of life. Rather it evolved gradually of these forms and therefore is integrally connected to the whole of the manifest creation on this earth. Such a pre-Darwinian position remains a distinct part of our heritage and we do not have to reinvent concepts such as ‘sustainability’.

The Yajurveda lays down that “no person should kill animals helpful to all. Rather, by serving them, one should attain happiness” (Yajurveda 13:47). This view was later developed by the great reformers such as Shakyamuni Buddha, Jain Tirthankara,

Mahavira, among others and is followed to this day. Here Ahimsa or non-violence is the greatest good and preserving the right to life is of paramount consideration, even it goes against the ethics of euthanasia. This philosophy was reiterated by Mahatma Gandhi who always spoke of the importance of Ahimsa and looked upon the cow as a

symbol of the benign element in animal life.

Thus, strengthening our reverence for all life including animals and insects becomes part and parcel of our Samskara.

In Sanskrit, therefore the word Paryavarana is used for environment, meaning that which embraces us- our surroundings. In the Atharva Veda, we find equivalent terms namely, Vritavrita, Abhivarah, Avritah,

Parivrita, etc.

Vedic view on the basic elements of our environment is referred to in the Atharvaveda as Chandamsi: ‘Wise utilize three elements variously

OBEISANCE TO EARTH

The Atharva Veda presents a magnificent Hymn to the Earth which is replete with incantations about the significance of ecological and environmental values.

which are varied, visible and full of qualities. These are water, air and plants or herbs. They exist in the world from the very beginning’.

The Panchabuttas or the Five Elements that are manifested on the planet earth are: Earth or land; Water; Light or lustre; Air, and Ether. Maintaining the balance of these five elements is critical for the survival of life on earth. Going beyond the ecological limits or expanding our ecological footprint can only usher in disequilibrium and this was manifested with the unleashing of COVID19.

In the Atharvaveda, the Earth is described in one hymn of 63 verses. This famous hymn referred to as Bhumisukta or Prithivisukta reinforces the significance of environmental consciousness.

We need to appreciate that the key problem in our rural areas is that of ‘ecological poverty’ rather than simply that of ‘economic poverty’. As the late Anil Agarwal reiterated that the survival and wellbeing of the poor

depended more on 'Gross Natural Product' rather than 'Gross National Product'. This is because the poor are dependent on the environment for their survival, any degradation of the environment would have a profound impact on their lives.

There is a need to introduce a Liability Law to punish the corporates-global and national, who are guilty of destruction of the environment and who are guilty of misuse of public funds. In the name of the global, local issues cannot be marginalised and the 'right to survival' includes 'ecological survival', based on a robust national environmental regulatory framework where Bharat takes the lead among all the nations. Environment and its protection can only be gleaned by putting into action the teachings of our ancient texts and scriptures.

Director for Internationalisation, Faculty of Engineering and Physical Sciences, School of Natural and Built Environment, Fellow, The Senator George J Mitchell Institute, for Global Peace, Security and Justice, Queen's University Belfast, Belfast BT7 1NN, Northern Ireland



PARYAVARAN SANRAKSHAN GATIVIDHI

MISSION TO FIGHT POLLUTION

IT'S OUR DUTY TO MAKE EARTH A PLACE WHERE ALL LIVES CAN CO-EXIST

PROF M. K. SHRIMALI



PA R Y A V A R A N SANRAKSHAN GATIVIDHI is a participatory program evolved by Rashtriya Swayamsevak Sangh and is a chain of student, teacher and education institutes to spread awareness on environmental issues and taking appropriate measures to combat it.

PSG popularly known as Paryavaran Sanrakshan Gatividhi started out with an objective/mission to reach out to a large section of society through educational Institutions. Any development must be inclusive, sustainable and for the betterment of the humankind. A better ecosystem for livable is an inventory for the future. This part of the earth is known to

be the abode to God since life has descended on this planet. So, it is the prime duty of human beings to make it a place where all life co-exists. It is in this context that the vision of the Praivaran Sanrakshan Gatividhi was professed to inculcate values in human beings to get the right perspective towards surroundings the environment globally to save and safeguard humanity.

In order to achieve the said objective, it is extremely important to provide the right kind of education and educational Institutes play a vital role in it. The chain of values system to be employed have students, teacher, parents, society, country, and global world. Therefore, Praivaran Sanrakshan Gatividhi is a participatory program evolved by Rashtriya Swayamsevak Sangh and for all, not a solitude one. So, PSG has ushered an idea about protecting the environment and saving our motherland from all kind of pollutants which endangered life on the earth. Plastic material is the prime example of such pollution. Therefore, a chain of student, teacher and education institutes can play a vital role to sensitize the society and undoubtedly there will be significant and substantial change with the chain of rightful people.

It is inspiring to note that already 87 Vice-Chancellors from different Universities across the country have joined hand with PSG and more than sixty-one Environmental

Nodal Officers (ENOs) representing different Universities and educational institutes are involved to take this ground level flagship program in the mission mode. To begin with a concept of 5C, 4R and 3S are

awareness about the importance of the Environmental Program, PSG. The program mainly carrying out at the Institutional level through eco-club are essay writing competition, seminars,

entirely.

In the first PSG countrywide online mode program, the Vice Chancellor's conclave was held on 16th September 2020 which was graced by Prof. D P Singh Ji, Chairman, Chairman University Grant Commission where 7000 people watched live and more than 20,000 people watched on very next day and more than two hundred Vice-Chancellors, Institutional heads/Owners participated.

The notable environmental program carried out by various Institutions within a short span of time are (1) Tree ambulance, (2) Complete wastewater recycle and use for Harit Ghar, (3) Plantation of Medicinal use, (4) Replacement of plastic using alternative biodegradable material, (5) Plantation like tulsi etc at home.

Mother gives birth, but the environment protects us, so one needs to protect the environment which is a must for sustainability. Hence, it starts from 'me' and percolate into society.

Author is Professor at MNIT, Jaipur & President's nominee for NITs and IITs

Water Conservation	Reduce	Students Awareness
Forest Conservation	Reuse	Students Participation
Bio-diversity Conservation	Recycle	Students Movement for Transformation

evolved and introduced to the Universities and educational Institutions is: These activities will change the attitudes and

plantation, poster making, finally, it is the Harit Campus. The most desired change to bring is Eco-bricks. This Eco-brick an

ON MISSION MODE

Paryavaran Sanrakshan Gatividhi started out with an objective/mission to reach out to a large section of society through educational Institutions.

behaviour of a person towards the environment and turn them as a Paryavaran Mitra ultimately. These will take it from the Institution to home which leads to perceptible change towards the environment by society. Thus, Institutions are engaging various program in their domain and reach out and sensitize people to bring transformations. The enthusiasm among participating institutions for motivating and bringing other people and institution to join the program is exemplary.

Six teams CMTI have been formed at national level which has coordinator, mentor trainer and intern. This cohesive team is working towards preparing ground level karyakarta to create

innovative project will reduce plastic use to a minimal level and ultimately to control



ECO-BRICKS

NURTURING THE NATURE

SHUBHI BANTHIA HAS ALWAYS BEEN FASCINATED BY IDEAS TO REUSE AND RECYCLE EVERYTHING AROUND HER

SUBHI VISHWAKARMA



BEING A STUDENT of architecture, Shubhi Banthia has always been fascinated by the ideas to reuse and recycle everything around her from reusing the emptied kitchen bottles to beautiful flowerpots to torn old Tees for rags. Such passion and curiosity inspired her for contributing on various aspects of environment-related issues and when she got to know about Eco Bricks from a school project event at Guatemala which further motivated her to dug it deeper and the results were unbelievable.

The experience of working on Eco-Brick project provided her substantial understanding of the culminating her ideas into reality. She started cutting leftover plastic waste at home and filling it into empty bottles and thus making a table and ottoman for kids. Her architect mind and creativity is now willing to use these Eco-Bricks as infill in timber frame building systems along with vertical brick-like usage with mortar.

Eco-Bricks reduce the hefty sum of investment when it comes to recycling of plastic waste and transportation resulting in a heap of plastic waste on the outskirts of the city and inside the city as well and especially when amalgamated. She is of the view that our will and commitment can save our mother earth and nature and suggest 'think twice before just throwing the plastic into the dustbin'. She not only uses the DIY home decors by these recycling habits of her but also motivates others too. Now her family members and friends call her and take advice on these issues and thus forming a human chain of innovative, creative, and inclusive ideas to protect our earth.

MEGHALAYA

STRIVING FOR
FOOD SECURITY

ONLY HALF OF THE POPULATION HAS ACCESS TO TWO SQUARE MEALS A DAY

DR. RABI NARAYAN BEHERA

MEGHALAYA PLATEAU IS located in the north-eastern part of India. Although Meghalaya is a plateau, the topography presents a more rugged terrain characterized by steep hills, gorges, deep valleys and high ridges unlike the peninsular plateau of India. Apart from a few narrow valleys and low lands, most of the area under the plateau comes under UNEP's Class 4, Class 5 and Class 6 type of mountainous areas based on the combination of three criteria- elevation, slope and local elevation range (UNEP WCMC, 2002).

In Meghalaya, the tribal population constitutes 86 per cent of the total population (Census of India, 2011). Half of the population has access to two square meals a day with an occasional shortage and five per cent of the population suffers from acute hunger (Planning Department, GoM, 2008). Further, the state is deficient in food grain production due largely to hilly terrain (Planning Department, GoM, 2008: 236). As a result, the import of rice from neighbouring areas like the Brahmaputra plains and Sylhet plains had begun as early as 1784 (Lamin, 1995). Culturally, the region represents different food preferences compared to the rest of India, primarily by having less preference for dairy produce and common pulses. In general, the price of essential

commodities is relatively higher in these hilly areas and this is due to non-availability of most of the consumable items locally and higher transport cost. People of these areas require more food energy for a similar physical task and hence energy requirement is significantly higher than people living in the plains (Papola, 2012). Besides, these high elevated regions including hilly areas are characterized by inaccessibility, fragility, marginality, heterogeneity, natural instability and human adaptation mechanism. These areas are different from low land in terms of physiography, topographic features, climate, diversity of habitations for flora and fauna, ethnic diversity, land use/cover and other socio-economic conditions (ICAR, 2011). As rugged topography has overriding implication for man-resource nexus, and hence for the food security, the Meghalaya plateau is one of the hilly states of northeast India which eminently fits as an area for investigating the role of water bodies on the food security of local tribes.

Food availability is a precondition for food access in any farming system. Natural resource base is the pillar of any farming system which determines food availability irrespective of cultivating any crop.

Food availability is a precondition for food access in any farming system. Natural resource base is the pillar of any farming system which determines food availability irrespective of cultivating any crop. Availability of these natural resources has wide implications for food access. There are some resource bases such as the existence of a river or any other water body in or around a village which may not have a direct connection with

the introduction of cash cropping. But the river determines the availability of aquatic edibles in the respective farming system. Moreover, marginal areas like uplands or hilly areas where the water bodies are limited but very significant. Thus, here is an attempt to present the role of water bodies in hilly areas based on a primary survey in different farming systems in Meghalaya.

Availability of water body in or around the village determines the availability of aquatic food items directly and indirectly through irrigation. It provides direct access to edibles including fishes and other aquatic edibles and indirectly it helps increase in food production through irrigation. Thus, the availability of water body is a very common resource base which determines the availability of aquatic food irrespective of different farming systems. It is found that all the

selected villages are located close to the rivers and/or rivulets. Out of the seven channelized for irrigation both in areca nut (Nongtalang) and tea and straw-



villages, only three use traditional irrigation methods for agriculture (Table 1). River water is the main source of irrigation for wet paddy cultivation in the village (Thardnongiaiw) where ginger cultivation has been undertaken on a commercial basis, whereas stream water is being

berry (Sohliya-Mawthoh) village. Bamboo based drip irrigation method is used for betel vine cultivation areas of Jaintia hills. This method of irrigation is innovation and typical to the Jaintia Hills region of Meghalaya. The three villages i.e. both the jhum villages as well as villages that

Number of water bodies and irrigation in sample villages (Table 1)

Farming system		Types of water body			Use for irrigation
		River	Pond		
			Public	Private	
Sub	Jhum I (Mawrynniaw)	2	0	0	No
	Jhum II (Jongchetpara Songma)	2	0	0	No
Traditional cash crop	Broom (Kshaid)	1	0	0	No
	Areca nut (Nongtalang)	1	0	0	Yes
	Ginger (Thardnongiaiw)	1	0	1	Yes
Modern cash crop	Rubber (Machokgre)	1	0	2	No
	Tea and Strawberry (Sohliya-Mawthoh)	3		4	Yes

Source: Field work by the author Note: name of the villages are in parenthesis

Selected villages: edibles collected from water bodies (Table 2)

Farming system		Fish	Snail	Crab	Frog
Subsistence	Jhum I (Mawrynniaw)	✓	✓	✓	✓
	Jhum II (Jongchetpara Songma)	✓	✓	✓	✓
Traditional cash crop	Broom (Kshaid)	✓	✓	✓	✓
	Areca nut (Nongtalang)	✓	✓	✓	✓
	Ginger (Thardnongiaiw)	✓	✓	✓	
Modern cash crop	Rubber (Machokgre)				
	Tea and Strawberry (Sohliya-Mawthoh)	✓	✓		

Source: Field work by the author **Note:** ✓ refers to the collection of particular edibles

have adopted broom cultivation are rainfed and do not use any irrigation facilities. It must be mentioned that the irrigation facilities in different farming systems have been influenced by three major physical factors which include physiography, availability of water body and requirement of irrigation for particular crops. Availability of water for irrigation has accelerated the agricultural process in terms of a number of cropping seasons in farming systems like



areca nut, ginger and tea-strawberry. For example, the valley land of tea-strawberry and ginger farming

systems with irrigation facilities have double cropping. Although the villages cultivating broom grass and areca nut respectively are located in hilly areas, bamboo-based drip irrigation is restricted to betel vine plantation produced in areca nut plantation areas and not in broom grass cultivation. This is mainly because vine plantation requires irrigation. Other villages having low land or valley land also have the potential for irrigation.

The villages under jhum system as well as those under the traditional cash crop regime depend on water bodies to a great extent for meeting part of their food requirement unlike in the modern cash crop areas where the collection of food from water bodies has been minimal. Fish, snail and crab are the common edibles collected from nearby water bodies. Fishing is very common across farming systems except in the village with rubber plantation. Eating frog is limited to the Kshaid village (broom) and Mawrynniaw (jhum-I) village, where it is a preferred among the people. It shows water bodies play a very important role both for irrigation and collection of different edibles by the tribes. Availability of water resources in upland areas, where the farming system is different from one another, reflects in food consumption patterns.

Author is Assistant Professor, Department of Geography, Fakir Mohan University, Balasore Email: geomitraya@gmail.com

KARNATAKA

REJUVENATING THE POND

CHIKKANNANA KERE VILLAGE STORY IS AN INSPIRATION FOR ALL OF US

NARAYAN SHENOY

HOWARD ZINN, SOCIAL activist once said, “Small acts, when multiplied by millions of people, can transform the world” and such is the case of Kanangi village where the willingness, commitment, and passion of bringing change has helped the people immensely. ‘Chikkannana Kere’ a village pond located in Kanangi village of Kodavoor, Udupi, Karnataka state has been neglected for decades

more than a hundred acres of agricultural land as the water was abundant throughout the year. ‘Chikkannana Kere’ was used for irrigation and was a part of the social life of the community. During New Year Ugadi, local people used to practice fishing in this pond as a mode of celebration. Impact of urbanization and shifting from agriculture to other occupation resulted in the subsequent poor maintenance of a pond. Consequently, the pond was filled with silt and water plants and gradually got converted into a dumping yard. Despite repeated request to the local municipality and urban development authority for reviving the pond, no-one came forward to look into its problem. “Then we decided to remove the water plants and silt, by involving youth and others, to bring its age-old glory,” says K, Srinivas Rao, President of the pond development committee.

The total area of the pond is about 30 cent. Initially, a meeting was convened to discuss the process of cleaning. A day (Sunday) was decided to start the work. The cleaning process continued on three different weekends (Sundays). “It was really a great experience for all of us. I was surprised to see the involvement of local people and their enthusiasm during cleaning work. We will replicate this in nearby villages” Vijaya Kodavoor, local municipal councillor, who initiated this work.



and its presence has been relegated to the margin but it is inspiring to note that the members of local Gram Vikas Samithi and different youth organizations have initiated the rejuvenation of the pond by community participation.

It is believed that earlier pond was feeding



पर्यावरण PERSPECTIVE



Contact Us At:
9449802157
sanrakshanparyavaran@gmail.com

Don't forget to visit

WWW.PARYAVARANPERSPECTIVE.COM